CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वेदान्त

र

ह

स्य

द० ह२४६
वा०वि०पी०
पु० मू० २।५०

आंशिक आरक्षित

ब्रह्मनिष्ठ डॉ० द्वितीशचन्द्र चक्रवर्ती

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चार अद्वैत विश्वविद्यालय

वेदान्त शास्त्र का श्रवण प्रमाणसम्बन्धी असम्भावना दोष को दूर कर देता है। प्रमेय सम्बन्धी असम्भावना और विपरीत भावना को दूर करने के लिए शास्त्रों में श्रवण, मनन और निदिध्यासन की आवश्यकता बतलायी गयी है। अनात्मवस्तु के निरसन में ही वेदान्तशास्त्र का प्रामाण्य है, आत्मा को सिद्धि में नहीं। श्रुति प्रमाण द्वारा त्रिपुटी भाव का निरसन कर देने पर निरसन की अवधिरूप से परिशिष्ट स्वयं प्रकाश जो आत्मतत्त्व है, वही मुमुक्षु का वास्तव स्वरूप है।

इसी आत्मतत्व में प्रतिष्ठित कर देने के उद्देश्य से स्थापित नेपाल की अद्वैत संस्था द्वारा संचालित ये विश्वविद्यालय हैं। इनका उद्देश्य है संसाररूप दुःख से पार कर देना, वास्तव स्वरूप का ज्ञापन कर देना, त्रिविध ताप को हर देना एवं कार्यसहित अज्ञान की निवृत्तिपूर्वक ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त करा देना। फिर अद्वैत विश्वविद्यालय स्थापित हैं— क्रमशः नेपाल के ४ प्रसिद्ध स्थल—रिडी, थोर्गा में "तारक" नाम से पोखरा में "स्वरूप ज्ञापक" नाम से, नारायणगढ में "संताप हारक" नाम से और काठमाडौं में "ब्रह्म प्रापक" नाम से। नियमितरूप से अवैतनिक एवं निःशुल्क अध्यापन अध्ययन द्वारा ज्ञानसंरक्षण; विदेहमुक्ति-सुख का अनुभव एवं अध्यात्मवाद का अप्रत्याशित प्रचार प्रसार में ये विश्वविद्यालय तल्लीन हैं।

—ज्ञानेश्वर सरस्वती (देवेश्वर)
उपकुलपति तारक अद्वैत विश्वविद्यालय,
रिडी, थोर्गा, नेपाल।

२०३०।६।१
वि० सं०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वेदान्त-रहस्य

वेदान्त २८४

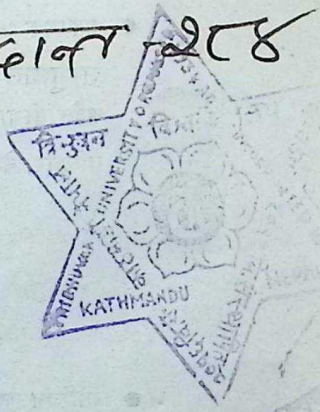

रचयिता

श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ डा० क्षितीशचन्द्र चक्रवर्ती

(एम० ए० डी० फिल० वी० एल०)

संस्थापक—अद्वैत संस्था

कुलपति—अखिल अद्वैत विश्व विद्यालय, नेपाल

प्रकाशक

शम्भुलाल सरस्वती

अद्वैत संस्था तनहुँ जिल्ला कार्यालय

वन्दिपुर, नेपाल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

● प्रकाशक :—
शम्भुलाल सरस्वती
अद्वैत संस्था तनहुँ जील्ला कार्यालय
वन्दिपुर, नेपाल

● आश्विन कृष्ण द्वितीया
वि० सं० २०३०

● सर्वाधिकार सुरक्षित : अद्वैत संस्था नेपाल

● मूल्य : २।५०

● मुद्रक :
श्री माहेश्वरी प्रेस,
भाट की गली (गोलघर), वाराणसी-२२१००१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

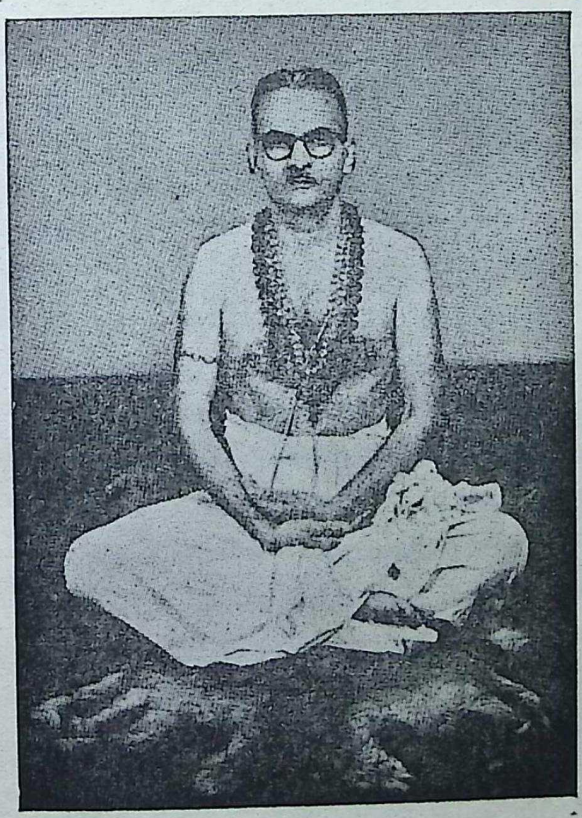

ब्रह्मनिष्ठ श्रीगुरुदेव पं० शिवराम पुरुषोत्तमानन्द

(डॉ० क्षितीशचन्द्र चक्रवर्ती एम. ए. डी.
फिल. बी. एल.)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

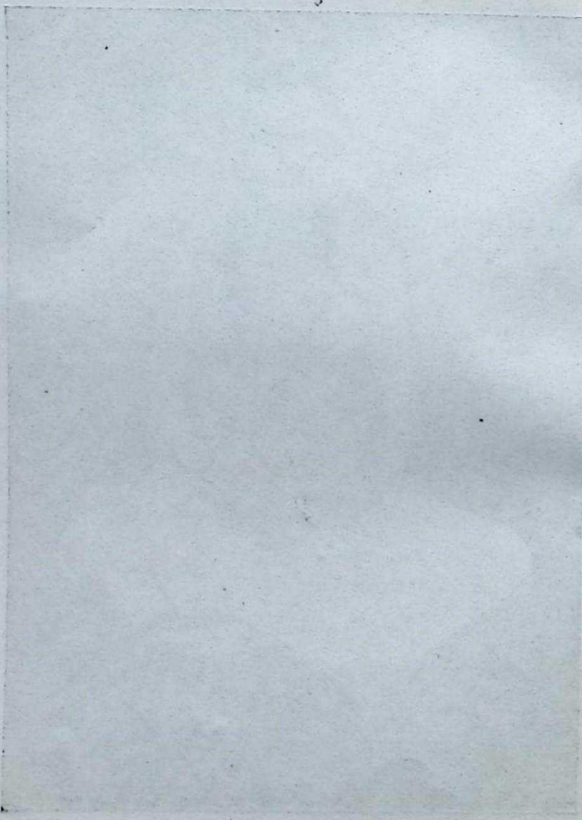

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आरक्षक आरक्षित

आशीर्वचन

अद्वैत संस्था के भक्त द्वारा प्रकाशित पुस्तक पुस्तिकाओं की यह विशेषता होती है कि उनमें सम्पूर्ण द्वैत प्रपञ्च का श्रुति, युक्ति और विद्वद् अनुभव द्वारा निरसन पूर्वक केवल परिशिष्ट स्वयं प्रकाश मान अद्वैत निजी स्वरूप का प्रतिपादन किया जाता है। प्रसङ्गवश ईश्वर तत्व और मनुष्य के प्रारब्ध में अधिष्ठित ईश्वर स्वरूप का निरूपण भी उपलब्ध होता है। ईश्वर स्वरूप का निरूपण केवल द्वैत प्रपञ्च के आत्यन्तिक निरसन के लिये है। इस प्रकार जब निर्गुण ईश्वर की भक्तिपूर्वक जगत् निरसन होता है, तब उस निरसन की अवधि रूप से ब्रह्म से अभिन्न निर्गुण ईश्वररूप मुमुक्षु का निजी वास्तव स्वरूप स्वयं प्रकट हो जाता है। इस प्रकार ब्रह्म की अभिव्यक्ति केवल निश्चल (अखण्डाकार) बुद्धि में संभव होती है।

अद्वैत संस्था के भक्त द्वारा प्रकाशित अद्वैत-तत्व प्रतिपादक पुस्तक पुस्तिकाओं के प्रकाशन में हृदयतः मेंरा आशीर्वाद है। इसप्रकार अद्वैत-विषयक पुस्तक प्रकाशन से भगवान पशुपतिनाथ प्रसन्न होकर प्रकाशक के हृदय में स्थित पारमार्थिक अन्धकार को विनष्ट कर देते हैं और भक्त ईश्वर विज्ञानी बन जाता है।

लक्ष्मी-निवास
२२ कांग्रेस एक्जिविशन रोड
कलकत्ता—१७

—क्षितीशचन्द्र चक्रवर्ती

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MoE

प्राक्कथन

जैसे पानी को एक क्षण अग्नि में गरम करने पर भी वह अपने शीतल स्वभाव को तत्काल ग्रहण कर लेता है, वैसे ही मनुष्य का स्वभाव सुखरूप होने के कारण अविनाशी सुख प्राप्ति का ही उसका अन्तिम लक्ष्य बना रहता है आत्म ज्ञान से ही उत्तम सुख प्राप्त होता है।

आत्मा के चार अंश हैं—(१) सत्, (२) चित, (३) आनन्द, (४) अद्वितीय। "मैं हूँ" और "मैं जानता हूँ". इन दो हिस्साओं का अनुभव अज्ञानियों का भी है किन्तु तृतीय और चतुर्थ हिस्सा का अनुभव नहीं है। बल्कि "मैं दुःखी हूँ", "बहुत से पदार्थ हैं" ऐसा आज्ञानी लोग स्वीकार करते हैं।

आत्मा के तृतीय और चतुर्थ हिस्सा को जानने के लिये उत्सुक मुमुक्षु को 'जानने वाले तुम ही अद्वितीय आनन्द स्वरूप हो' इस विषय को इस ग्रन्थि के सुरू में समझाया गया है, इसी प्रकार उत्तम अधिकारी के लिए वेदान्त परिशीलन और वाच्यैकता दो निबन्ध इस ग्रन्थ में जोड दिये हैं।

ऐसे अमूल्य ग्रन्थ रत्न को श्री शम्भुलाल सरस्वती जी ने मुमुक्षुओं के उपकारार्थ प्रकाशित कर अद्वैत संस्था को सर्मपित किया है अतः संस्था की ओर से वे धन्यवाद के पात्र हैं। ऐसे उत्तम ग्रन्थ-रत्न मुमुक्षु के हाथ देकर परम दयालु श्री गुरुदेव ने जो उपकार किया है उसके लिए हम मुमुक्षु सदैव ऋणि हैं।

२०३० आश्विन — धर्मनिष्ठ डिल्लीराज सरस्वती

"तारक" अद्वैत विश्वविद्यालय रिडी थोर्गा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वेदान्त-रहस्य

अद्वैत सम्बर्धक शम्भुलाल सरस्वती

निर्देशक अद्वैत संस्था

गण्डकी अञ्चल कार्यालय, नेपाल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MoE

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द० ६२४६
वा०वि०पी० पुस्तकालय
मू० २।५०

वेदान्त-रहस्य

ज्ञाता और ज्ञेय की एकता

प्रश्न—ज्ञाता और ज्ञेयभाव कहाँ तक रहेगा ? किस अवस्था में ज्ञाता द्वारा ज्ञेय वस्तु को जान लेने पर ज्ञेयभाव विनष्ट होगा ?

उत्तर—इस समय अज्ञानी और ज्ञानी पुरुष की भिन्न-भिन्न कोटियों का प्रसंग प्राप्त हुआ है।

अज्ञानी मनुष्य साक्षीचैतन्य द्वारा प्रकाशित जो प्रमाताभाव है, उसको अपना वास्तव स्वरूप मान लेता है। अर्थात् अज्ञानी मनुष्य चिदाभास प्रमाता को अपना वास्तव स्वरूप निश्चय कर लेता है। अतः जो अपने से पृथक् है ऐसे अनात्म पदार्थ को ज्ञेय मान लेता है। अर्थात् अज्ञानी मनुष्य भिन्न-भिन्न जगत् पदार्थ को जानना चाहता है और उस अनात्म प्रपञ्च को जानने वाला अपने को मान लेता है—"जैसे मैंने घट को जान लिया है"। यहाँ 'मैं' का अर्थ प्रमाता है और जिसको मैं ने जाना है वह मुझ से भिन्न (घट) पदार्थ है। यह अज्ञानदशा में ज्ञाता और ज्ञेयभाव एवं ज्ञाता द्वारा ज्ञेय को जान लेने का प्रसंग है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ज्ञानवान का प्रसंग इससे बिलकूल भिन्न है। बुद्धिमान् पुरुष जिसको ज्ञाता जान लेता है और जो वस्तु उस ज्ञाता द्वारा जानने योग्य है ये दोनों ही ज्ञानवान् पुरुष का अज्ञात निजी वास्तव स्वरूप है। इस से ज्ञात होता है कि जब तक आत्मा का सम्यक् अनुभव नहीं हो जाता (अतएव सम्यक् अनुभव का एकमात्र उपाय यही है) तब तक एक अद्वितीय आत्मस्वरूप (ब्रह्मस्वरूप) ही ज्ञाता और ज्ञेय दो भागों में विभक्त होकर स्थित रहता है। अर्थात् अखण्ड आत्मवस्तु ज्ञाता बन जाता है और इसीलिये ज्ञेय भी बन कर स्थित रहता है। बुद्धिमान् पुरुष की दृष्टि में ज्ञेय ज्ञाता से भिन्न नहीं होता। इसका कारण यह है कि यदि ज्ञाता ज्ञेय से भिन्न मान लिया जाय तब ज्ञाता द्वारा कभी भी ज्ञेय को साक्षात् जान लेना सम्भव न होगा। जैसे मैं मुझ से भिन्न अन्य पुरुष को मेरा वास्तव-स्वरूप नहीं मान सकता। अतः यह युक्ति-युक्त एवं अनुभव सिद्ध भी है कि मेरे द्वारा साक्षात् जान लेने योग्य वस्तु मेरा ही अप्रसिद्ध स्वरूप है। अर्थात् प्रसिद्ध मुझ से अब तक अप्रसिद्ध मेरे वास्तव-स्वरूप को ही जान लेना सम्भव होता है; मुझ से अतिरिक्त वस्तु को जानना सम्भव नहीं।

इस समय एक अखण्ड 'मैं' कैसे ज्ञाता और ज्ञेय होकर स्थित है, यह जान लेना चाहिए।

मैं वास्तव में एक अद्वितीय आत्मा (ब्रह्म) हूँ, किन्तु जहाँ तक अपने वास्तव स्वरूप का सम्यक् ज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ है और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जिस उपाय से यह ज्ञान उत्पन्न हो सके, इसके प्रपायरूप साक्षात् ज्ञान उत्पन्न करने के लिए—

अखण्ड ब्रह्म वस्तु ज्ञाता और ज्ञेय बन कर अवस्थित होता है। अर्थात् अखण्ड ब्रह्मवस्तु का जो चार विशेषण है वह है—(१) सत्, (२) चित्, (३) अद्वय, (४) आनन्द। इसके भीतर प्रथम और दूसरा विशेषण प्रसिद्ध होने के कारण ज्ञाता नाम से कथित होता है। यह ज्ञाता अखण्ड वस्तु का प्रसिद्ध भाग है। ज्ञाता की प्रसिद्धि का कारण यह है कि उसमें अज्ञान नहीं रह सकता। क्योंकि अखण्ड ब्रह्मवस्तु की सच्चित् हिस्सा में अज्ञान नहीं रह सकता (अतएव सच्चित्रूप स्वतः सिद्ध हिस्सा प्रसिद्ध है)। अर्थात् ज्ञाता "मैं" अज्ञानरहित होने के कारण सच्चित् मुझ में (साक्षी चैतन्य में) अज्ञान की स्थिति नहीं हो सकती। कारण यह है कि यदि साक्षी चैतन्य मुझको अज्ञान आवृत कर देता तब जगत् की भी प्रसिद्धि नहीं हो सकती। अतएव सच्चित् नाम से प्रसिद्ध जो ज्ञाताभाव (साक्षीभाव) है वह अखण्ड आत्मवस्तु का प्रसिद्ध भाग है। यह प्रसिद्ध हिस्सा ज्ञाता वस्तु "मैं" है।

अखण्ड ब्रह्म वस्तु का जो प्रथम और द्वितीय भाग है वह ज्ञाता है और तृतीय एवं चतुर्थ हिस्सा ज्ञेय है। अर्थात् अद्वय आनन्द नाम से प्रसिद्ध जो ब्रह्म वस्तु का विशेष अप्रसिद्ध भाग है वह ज्ञेय है। यह ज्ञेय हिस्सा वस्तुतः ज्ञाता हिस्सा से भिन्न नहीं है किन्तु अज्ञान के कारण ये दो हिस्सायें भिन्न-भिन्न जैसी दिखायी देती हैं। कैसे ? सुनो; जब अज्ञान प्रकट होता है (अर्थात् माना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जाता है) तब अज्ञान का कार्य जगत् उत्पन्न दिखाई देता है माया से उत्पन्न जो जगत् है, वह साक्षी चैतन्य मुझ से प्रकाशित रहता है। मैं ही जगत् को जानता हूँ। अतः मैं अविद्याकार्य जगत् का एकमात्र ज्ञाता (साक्षी चैतन्य सत् और चित् वस्तु) हूँ। उसके बाद अज्ञान आत्मस्वरूप को ढँक देता है (अर्थात् ज्ञाता मेरा जो विशेष अर्थात् अप्रसिद्ध स्वरूप है उसको आवृत कर देता है)। इत प्रकार अज्ञान के कारण मेरा वास्तव अद्वय सुखस्वरूप आवृत हो गया है। अतएव जो साक्षी होकर अज्ञानकार्य जगत् को प्रकाशित कर रहा हूँ ऐसे मुझको अज्ञान कार्य को प्रकाश करने के कार्य से विरहित होकर अपने आवृत अतएव इस समय तक अप्रसिद्ध विशेष स्वरूप का निजी स्वरूप से अभिन्न और अपना वास्तव-स्वरूप जान कर अनुभव करना चाहिए। सच्चित् (साक्षी चैतन्य) हिस्सा को निजी वास्तव परिपूर्ण अद्वय सुखरूप हिस्सा का साक्षात्कार करना चाहिये। जो अज्ञानवशात् जगत् का अनुभव कर रहा था उसको इस समय अपने एकमात्र कर्तव्यरूप से केवल निजी अखण्ड अविभाज्य (सच्चित् अद्वय सुखस्वरूप) का साक्षात् अनुभव करना चाहिये—"मैं (सच्चित्) हूँ वस्तुतः ब्रह्म वस्तु (अद्वय आनन्दस्वरूप)" इस प्रकार साक्षात्कार करना चाहिए।

ज्ञाता द्वारा ज्ञेय अपने विशेष (अप्रसिद्ध) स्वरूप का साक्षात् अनुभव करना आवश्यक होता है; यह श्रुतिका एकमात्र सिद्धान्त और निर्देश है। केवल आत्मा का (अद्वय आनन्दरूप विशेषस्वरूप

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का) साक्षात् अनुभव करना चाहिये। इस प्रकार अनुभव करना किसी प्रकार प्रयत्न साध्य (क्रियारूप) नहीं है; क्योंकि जो सच्चित है वह अद्वय आनन्द है। क्योंकि ब्रह्म अखण्ड वस्तु है अतः उसमें सामान्य और विशेष हिस्सा केवल अज्ञान द्वारा कल्पित है। अतः अज्ञान को विनष्ट करने के लिये ज्ञाता पुरुष को अपने ज्ञेय स्वरूप का साक्षात्कार करना चाहिये। मुमुक्षु का केवल इतना ही कर्तव्य है। क्योंकि केवल अज्ञानकृत जगत में भ्रमण करते रहने से कोई फल नहीं मिलेगा, इतना ही नहीं किन्तु अशेष दुःख का अनुभव भी करना पड़ेगा।

जगत अज्ञान का कार्य है। जब उसकी उत्पत्ति होती है तब ज्ञाताभाव उत्पन्न होता है। अतः जगत का अवभासन वास्तव में मिथ्या है। यदि जगत का अवभासन निरर्थक एवं मिथ्या है तब उसके अन्तः पाती चिदाभास प्रमाताभाव को स्वीकार कर प्रमेय जगत् के बारे में निरन्तर व्यापृत रहना अशेष दुःख भोग का एक मात्र हेतु है यह कहना ही नहीं पड़ेगा। अतः अज्ञान कृत जगत के अवभासकपन को छोड़कर अज्ञान से आवृत अपने अप्रसिद्ध वास्तव अद्वय सुख स्वरूप को प्राप्त करना चाहिये (साक्षात् अनुभव करना ही प्राप्त करना है)। यह श्रुतिका स्पष्ट सिद्धान्त है। ज्ञाता पुरुष और ज्ञेय वस्तु की सदैव विद्यमान स्वयं प्रकाशमान एकता को प्रदर्शित करना ही श्रुति का सिद्धान्त है। श्रुति का सिद्धान्त यही है ऐसा जान लेना ही ज्ञाता द्वारा ज्ञेय वस्तु का साक्षात्कार करना है। अज्ञान मिथ्या है—श्रुति ने प्रतिपादन किया है। इस प्रकार से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ही अज्ञान का विनाश संभव हो सकेगा। अपने वास्तव स्वरूप का साक्षात्कार अयत्न सिद्ध (सदा सिद्ध) है।

प्रश्न—ज्ञेयभाव के नष्ट हो जाने पर क्या ज्ञाता भाव रहेगा ? ज्ञाता ज्ञेय से भिन्न है वा नहीं ?

उत्तर—अखण्ड आत्मस्वरूप के अज्ञान से ज्ञाता ज्ञेयभाव उत्पन्न हो जाता है। अतएव ज्ञेय वस्तु का ज्ञान भी (प्रमाणरूप श्रुति महावाक्य भी) आवश्यक होता है। वस्तुतः अखण्ड आत्मा निरावरण (श्रुति प्रमाण पूर्वक) साक्षात्कार नहीं होता, तब ज्ञान (प्रमाण) के सहारे से ज्ञाता द्वारा ज्ञेय का साक्षात् अनुभव करना आवश्यक हो जाता है।

अखण्ड आत्मा स्वतः और सर्वदा सिद्ध है, तथापि उसके बारे में जब तक निश्चित ज्ञान नहीं होगा, तब तक वह अखण्ड आत्मा ब्रह्म ज्ञान ज्ञाता और ज्ञेयरूप से प्रतीत होता है। यदि अज्ञान को न माना जाय तब ज्ञान द्वारा ज्ञाता को ज्ञेय वस्तु का साक्षात्कार करना संभव नहीं होता। स्वतः सिद्ध आत्मा के बारे में दो प्रकार का विकल्प सम्भव होता है—(१) तुम स्वतः सिद्ध उस आत्मा को निश्चितरूप से जानते हो और (२) यदि तुम कहते हो कि मैंने आत्मा को नहीं जाना (अर्थात् अखण्ड आत्म वस्तु का सम्यक् ज्ञान मुझे नहीं हुआ है), तब केवल तुम्हारे हित के लिये तुम्हारे द्वारा स्वीकृत आत्मस्वरूप का अज्ञान ही तुम्हारे वास्तव अखण्ड आत्मस्वरूप को ज्ञान ज्ञाता और ज्ञेय रूप से विभाजित कर देता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। क्योंकि इस प्रकार विभाजन के विना प्रमाण (श्रुति का महावाक्य) तुम्हें (ज्ञाता को) ज्ञेयवस्तु के साक्षात् अनुभव में नहीं पहुँचा सकेगा। इससे यह सिद्ध हुआ कि जब तुमने अखण्ड आत्मरूप को सम्यक् रूप से नहीं जाना अर्थात् तुम अज्ञान को मानते हो तब परमहिकारी श्रुति भगवती जिस ज्ञातारूप से तुमने अपने को स्वीकार किया था। उस ज्ञाता तुम्हारे वास्तव आत्म-स्वरूप ज्ञेय वस्तु के सम्यक् अनुभव करने में (साक्षात्कार करने में) तुम्हें सहायता देती है। यदि मेरा अखण्ड आत्मस्वरूप निवारण है तब उसमें अज्ञान कहा से आया ? यदि तुम ऐसा कहते हो तब इसका उत्तर है तुम्हारे मानने से ही अज्ञान स्वीकृत हुआ है। अच्छा बताओ, क्या तुमने अपने वास्तव अखण्ड ब्रह्म स्वरूप को सम्यक् (श्रुति के महावाक्यरूप प्रमाण के बल से) जान लिया है ? तुम्हारे उत्तर से ही जाना जाता है कि तुमने अज्ञान को स्वीकार कर लिया है। अज्ञान और किसी के द्वारा स्वीकृत नहीं हुआ। केवल तुमने अज्ञान को मान लिया है।

यदि तुम पूछो कि मेरा यह अज्ञान कहाँ स्थित है ? इसका उत्तर यह है कि तुम ही बताओ (क्योंकि अज्ञान को तुमने ही स्वीकार किया है) तुम्हारे अज्ञान को किसने जाना ? (कौन अनुभव कर रहा है ?) तुम्हारे द्वारा स्वीकृत अज्ञान को खास तुम ही अनुभव नहीं कर रहे हो ? तुम्हारे अपने ही उत्तर से अज्ञान तुम्हारे अनुभवस्वरूप (अखण्ड आत्मस्वरूप) में स्थित (कल्पित) है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ठीक है, अज्ञान मेरे अखण्ड आत्मानुभव में स्थित है किन्तु इस अज्ञान से हमारा हित होगा किम्वा अहित ? इसका उत्तर यह है कि तुम्हारे द्वारा अवश्यम्भावीरूप से स्वीकृत आत्मस्वरूप का अज्ञान माता की तरह हितकारिणी श्रुति के सहारा से तुम्हारा हित ही साधन करेगा। तुम्हारे द्वारा स्वीकृत अज्ञान तुम्हारे लिये निष्फल न होकर हितकर ही बना हुआ है। यह हित इस प्रकार है :—

तुम्हारे अज्ञान के फलस्वरूप परमेश्वर से श्रुति की अभिव्यक्ति हुई है; यह श्रुति ईश्वर रचित है और अज्ञात आत्मस्वरूप के प्रामाणिक (सम्यक्) ज्ञान में एकमात्र हेतु है।

प्रमाणरूप श्रुति ने तुम्हारे अज्ञात आत्मस्वरूप को दो भागों में विभाजित किया है—(१) ज्ञाता, (२) ज्ञेय। यह ज्ञाता लौकिक ज्ञाता से भिन्न, अलौकिक किम्बा अत्यन्त हितकारी ज्ञाता है और ज्ञेय भी अलौकिक अज्ञात तुम्हारा वास्तव आत्मस्वरूप है। अर्थात् एक अद्वितीय आत्मस्वरूप सामान्य और विशेष इस प्रकार दो भागों में विभाजित हो गया है। सच्चित् हिस्सा ज्ञाता है और सुखरूप अद्वितीय वस्तु ज्ञेय हिस्सा है।

निष्कर्ष यह है कि श्रुति ने तुम्हारे अज्ञान को निराकृत किया है। वह निराकरण क्या है ? श्रुति प्रमाण के बल से तुमने कल्पित ज्ञाताभाव को प्राप्त करके वास्तव अद्वितीय सुखस्वरूप को प्राप्त करने का (साक्षात्कार करने का) अवसर पाया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस प्रकार ज्ञाता जब निजी वास्तव ज्ञेयस्वरूप को साक्षात् जान लेता है, तब अज्ञान निरस्त हो जाता है और ज्ञेयभाव के साक्षात्कृत हो जाने के कारण ज्ञेयता नहीं रहती। साथ ही ज्ञाता-भाव भी विनष्ट हो जाता है।

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि जब ज्ञेयभाव नहीं रहता तब उसका ज्ञाता भी नहीं रह सकता। इसका कारण यह है कि अज्ञान द्वारा कल्पित ज्ञाता और ज्ञेयभाव अज्ञान के विनष्ट होने पर विनष्ट हो जाता है।

प्रश्न—ज्ञाता और ज्ञेय का यथार्थ स्वरूप क्या है? ज्ञेय को जान लेने से ज्ञाता को क्या फल मिलेगा?

उत्तर—ज्ञाता और ज्ञेय इन दो वस्तुओं का स्वरूप ज्ञान और अज्ञान दशा में भिन्न-भिन्न होते हैं। अज्ञानी मनुष्य साक्षी द्वारा अवभासित चिदाभास प्रमाता को ज्ञाता मान लेता है और प्रमाता अपने से भिन्न पदार्थ को ज्ञेय समझ लेता है किन्तु ज्ञानवान् पुरुष साक्षी चैतन्य को ज्ञाता निश्चय कर लेते हैं और अपना जो विशेष अद्वय सुखस्वरूप है उसको ज्ञेय जानते हैं।

जैसे प्रमाता घट को जान कर प्रसन्न होता है वैसे बुद्धिमान् पुरुष अपने अप्रसिद्ध अद्वितीय सुखस्वरूप का साक्षात्कार कर दुःख से विनिर्मुक्त हो जाता है।

जब अपना अखण्ड ब्रह्मस्वरूप अज्ञात रहता है तब अज्ञान-वशात् वह एक अद्वितीय ब्रह्म चिन्मय और आनन्दमय इन दो भागों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MOF

में विभक्त की तरह प्रतीत होती है। एवं प्रकार चिद्रूप ज्ञाता पुरुष अपने विशेष आनन्दमय स्वरूप को जान कर (साक्षात् अनुभव कर) ज्ञानी बन जाता है (मुक्त हो जाता है)।

आत्मस्वरूप,वास्तव में अद्वितीय स्वरूप है; किन्तु जब अखण्ड निजी वास्तवस्वरूप अज्ञात रहता है, तब अज्ञात वह सुखस्वरूप ज्ञेय बन कर चिद्रूप ज्ञाता का द्रष्टव्य बन जाता है अर्थात् मुमुक्षु हम लोगों को (चैतन्यस्वरूप हम लोगों को) हमारा वास्तव जो अद्वितीय सुखस्वरूप है उसका साक्षात्कार करना आवश्यक हो जाता है। आवश्यकता का अर्थ अपने वास्तवस्वरूप के अज्ञातपन को निराकरण करना है, अर्थात् अपने विशेषस्वरूप का सम्यक् अनुभव करना। इस प्रकार ब्रह्म साक्षात्कार अज्ञान का निवारक है, वह तभी सम्भव होगा जब अज्ञानदशा में विभक्त अपने वास्तव आत्मस्वरूप को अर्थात् ज्ञाता और ज्ञेय को एकता का सम्यक् अनुभवपूर्वक पुनः अखण्ड बनाएँगे। इस प्रकार अज्ञान द्वारा खण्डित अपना वास्तव चित्सुखंस्वरूप केवल सत्ता सामान्य स्वरूप में पर्यवसित हो जाता है। अर्थात् जो अखण्ड सुखस्वरूप चित् और आनन्दरूप से निश्चित हुआ था वह अद्वितीय परमार्थ सत्य ब्रह्म-स्वरूप में पर्यवसित होता है।

हमारा वास्तव असाधारणस्वरूप ज्ञेय ब्रह्म है; ज्ञाता प्रसिद्ध केवल सामान्यस्वरूप है। सामान्यस्वरूप विशेषस्वरूप में पर्यवसित हो जाता है। अतः ज्ञाता अपने वास्तव असाधारण अद्वितीय सुख-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वरूप ज्ञेय वस्तु का जब साक्षात् अनुभव करता है तब ज्ञाता पुरुष की परिपूर्णता (पूर्णसुखीपन) सिद्ध हो जाती है।

रहस्य बात यह, है कि परमार्थ सत्यवस्तु अखण्ड (अद्वितीय) है। किन्तु अज्ञात दशा में सर्वदा सिद्ध वह परमार्थ सत्यभूत वस्तु ज्ञाता और ज्ञेय इस प्रकार दो भागों में विभक्त मानी गयी है। अर्थात् अखण्ड आत्मवस्तु जब तक अज्ञात रहती है तब तक ज्ञाता पुरुष ज्ञेय नाम से प्रसिद्ध होता है और इसीलिये ज्ञाता पुरुष को अपने वास्तव अखण्डस्वरूप को जानने के लिये स्वयं सामान्यरूप ज्ञाता बन कर अपने वास्तव विशेष (अखण्ड सुख) स्वरूप का साक्षात् अनुभव करना चाहिये। इस प्रकार कल्पित ज्ञाता अंश और उससे कल्पित साक्षात्कार योग्य विशेष अंश का निराकरण-पूर्वक अपने वास्तव निर्विभाग निर्विशेष अखण्ड सुखस्वरूप को प्राप्त करना अपने वास्तव विशेष स्वरूप का साक्षात्कार करना है। यद्यपि ज्ञाता और ज्ञेय ये दोनों कल्पित हैं तथापि जब ज्ञाता ज्ञेय-स्वरूप का साक्षात् अनुभव कर लेता है तब ज्ञाता असाधारण अपना वास्तव अखण्ड ज्ञेयस्वरूप ही बन जाता है। ज्ञाता कल्पित है, ज्ञेय अकल्पित है। कल्पित वस्तु का अकल्पित अधिष्ठान वस्तु में पर्यवसित होना ही ज्ञाता द्वारा ज्ञेय स्वरूप का साक्षात्कार करना है। अर्थात् सम्यक् ज्ञान द्वारा ज्ञाता अपने सीमित भाव का निरसन कर सदा के लिए अपरिच्छिन्न अखण्ड निजी सनातन सुखस्वरूप ही बन जाता है, इसी को साक्षात्कार कहा गया है। इस प्रकार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ज्ञाताभाव विनष्ट होता है और ज्ञेयभाव द्वारा उपलक्षित अपना अखण्ड ब्रह्मस्वरूप परिशिष्ट रह जाता है।

प्रश्न—शास्त्रों में जो ज्ञाता और ज्ञेयभाव किम्वा द्रष्टा और दृश्यभाव को बताया है उसका आशय क्या है ? दृक् और दृश्य का सम्बन्ध क्या वास्तव है ? यदि नहीं तो श्रुति ने द्रष्टा और दृश्य का सम्बन्ध क्यों बताया ?

उत्तर—परमार्थ सत्य वस्तु अद्वितीय है। अतः पारमार्थिक दृष्टि से अखण्ड वस्तु में द्वैत सम्भव नहीं है। इसीलिये अद्वितीय आत्म ब्रह्म में वस्तुतः ज्ञाता और ज्ञेयभाव (किम्वा दृक् दृश्यभाव) कदापि सम्भव नहीं है। अर्थात् जब अखण्ड आत्मस्वरूप की साक्षात् उपलब्धि होती है तब उसमें कोई भी द्वैतभाव नहीं रहता किन्तु जब अखण्ड आत्मस्वरूप की उपलब्धि नहीं होती तब उसमें अज्ञान द्वारा ज्ञाता और ज्ञेयभाव अवश्य कल्पित होता है।

वह ज्ञाता और ज्ञेयभाव की अर्थात् दृक् और दृश्यभाव की कल्पना ज्यादा सार्थक हो जाती है। क्योंकि अज्ञान आत्मा को सम्यक् रूप से जानने के लिये मुमुक्षु पुरुष ज्ञाताभाव को प्राप्त करता है और जिसने ज्ञाताभाव को प्राप्त कर लिया है केवल वही पुरुष अपने वास्तव स्वरूप का सम्यक् रूप से अनुभव कर सकता है।

इस प्रकार अज्ञात आत्मा में जो ज्ञेय और ज्ञाताभाव कल्पित होता है वह केवल अज्ञात आत्मा को सम्यक् रूप से जानने के लिये ही होता है। इतना ही नहीं, किन्तु ज्ञाता पुरुष शास्त्र प्रमाण के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बल से ही ज्ञेय वस्तु का ज्ञान कर सकता है। एवं प्रकार शास्त्र (जो प्रमाणरूप बन जाता है) ज्ञाता पुरुष को अपने वास्तव स्वरूप ज्ञेय ब्रह्म का साक्षात्कार करना चाहिये, ऐसा विधान करते हैं। अर्थात् जब आत्मस्वरूप अज्ञात रहता है तब शास्त्र हमें हमारा वास्तव स्वरूप अवश्य ज्ञातव्य है। किम्बा द्रष्टव्य है यह उपदेश देता है। एवं प्रकार अज्ञान वशात् अखण्ड ब्रह्म वस्तु में प्रमाण जनित ज्ञान के लिये ज्ञाता को "ज्ञेय वस्तु द्रष्टव्य है", इस प्रकार उपदेश देना अत्यन्त सार्थक है। अखण्ड आत्मवस्तु में अज्ञान के कारण ज्ञातव्य ज्ञाता और ज्ञान इस प्रकार तीन प्रकार विभाग सार्थक रूप से सम्भव होता है। यदि ऐसा न हो तो आत्मस्वरूप अज्ञात ही रह जाता। इसलिये आत्मस्वरूप के सम्यक् ज्ञान के लिये "ज्ञाता पुरुष का अपना स्वरूप ज्ञेय है" इस प्रकार विभाग अत्यन्त आवश्यक हो जाता है।

इस प्रसंग में अपने वास्तव स्वरूप को सम्यक् रूप से जान लेने के लिये जो ज्ञाता और ज्ञेय का सम्बन्ध आवश्यक हो जाता है— उसके बारे में हमें सर्वप्रथम अनुसन्धान करना आवश्यक है। अर्थात् शास्त्र अनुसार अपने वास्तव स्वरूप को जान लेना वस्तुतः प्रयत्न साध्य है अथवा प्रयत्न बिना भी सम्भव होता है, इस प्रकार जिज्ञासा पैदा हो जाती है। इतना ही नहीं, बल्कि हमें इस प्रकार की समझ भी उत्पन्न हो जाती है कि जो ज्ञेय वस्तु है वह अवश्य ज्ञाता पुरुष से भिन्न होगी। अर्थात् शास्त्रों में "ज्ञाता पुरुष को ज्ञेयवस्तु का ज्ञान करना चाहिये" ऐसा जो उपदेश मिलता है वह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अवश्य ज्ञाता पुरुष से अलग होगा ऐसा हमें प्रतीत होता है। क्योंकि लौकिक व्यवहार में ज्ञाता पुरुष और ज्ञेय पदार्थ भिन्न ही पाया जाता है, किन्तु मुमुक्षु को अपने वास्तवस्वरूप के साक्षात्कार के लिए उपदेश देने वाली श्रुतियाँ कहती हैं—देखो, तुम ज्ञाता बन कर ज्ञेय वस्तु के साक्षात्कार के लिए प्रवृत्त हो रहे हो, वह ज्ञेय वस्तु तुमसे अलग बिलकूल ही नहीं है। किन्तु तुम्हारा ही सनातन स्वरूप है। उसका कारण यह है कि जहाँ तक तुमने अपने स्वरूप को अवगत नहीं किया, तब तक अज्ञानवशात् वस्तुतः तुम अखण्ड वस्तु होकर भी जिस ज्ञेय वस्तु को जानने के लिये प्रवृत्त हो रहे हो वह भी तुम्हारा ही वास्तव स्वरूप है। क्योंकि तुम्हारा वास्तव स्वरूप एक अखण्ड वस्तु है। इस अखण्ड आत्मा में केवल अपना ज्ञान न कर सकने के कारण दो विभाग कल्पित हो जाता है—ज्ञाताभाव और ज्ञेयभाव। अतः देखो, तुम्हारा ज्ञेय ब्रह्म तुम से बिलकूल भी भिन्न नहीं है। एक अखण्ड आत्मवस्तु ही कल्पित चिद्रूप अंश द्वारा ज्ञाताभाव और अखण्ड सुखरूप अंश द्वारा ज्ञेय-भाव को प्राप्त हुई है। केवल साक्षात्कार के लिये तुम्हारा वास्तव अखण्डस्वरूप ज्ञाता और ज्ञेयभाव में विभक्त हो गया है। अतएव तुम किसी प्रयत्नरूप क्रिया के बिना सहजरूप से ही निजी वास्तव-स्वरूप को प्राप्त करोगे। तुम्हें निश्चित् रूप से जान लेना होगा कि ज्ञेयवस्तु तुम्हारा ही वास्तवस्वरूप है। यद्यपि तुमने अज्ञानवशात् ज्ञाताभाव को प्राप्त कर लिया है तथापि तुम अपने को और ज्ञेय-वस्तु को "एक अखण्ड अविभाज्य चित्सुखस्वरूप ब्रह्मवस्तु मैं हूँ"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऐसा जान कर ज्ञाता और ज्ञेयभाव का उल्लंघन कर सहजरूप से निजी पदार्थ अखण्ड स्वरूप में स्थित हो सकते हो। यह श्रुति का सिद्धान्त है। अतः ज्ञाताभाव और ज्ञेयभाव एक ही वस्तु का ज्ञापक है इस प्रकार निश्चयपूर्ण बुद्धि द्वारा स्थित होकर यथास्थित अवस्थित होने पर ज्ञाता और ज्ञेय दोनों वस्तु एक होकर स्वयं प्रकाश परिशिष्ट रह जाता है।

श्रुति ने ज्ञाता और ज्ञेय की जो एकता का उपदेश दिया है वह स्वतः और सर्वदा सिद्ध है। अनायास ही उस सर्वदा सिद्ध एकता का साक्षात् अनुभव किया जा सकता है।

प्रश्न—यदि ज्ञाता और ज्ञेय की एकता स्वतः सिद्ध है तब "ज्ञाता पुरुष को ज्ञेय वस्तु का अवश्य साक्षात्कार करना चाहिये" इस श्रुति का आशय क्या है ?

उत्तर—ज्ञाता और ज्ञेय हर हालत में एक ही वस्तु है, तथापि केवल अज्ञान के कारण ज्ञाता ज्ञेयभाव प्रतीत होता है। यह प्रतीति ठीक नहीं। श्रुति का आशय है ज्ञाता और ज्ञेय एक ही वस्तु है इस प्रकार निर्देशन देना। श्रुति में स्पष्ट रूप से बतलाया गया है कि श्रुति केवल स्वतः सिद्ध एकता के अज्ञान के निवारण के लिये "ज्ञाता और ज्ञेय की एकता है" यह उपदेश देती है। अतः "ज्ञाता ज्ञेय से अवश्य भिन्न होगा" इस प्रकार हमारा जो भ्रान्त निश्चय है उस निश्चय को ही श्रुति शास्त्र ने बताया है। और किसी नई बात के बारे में श्रुति ने उपदेश नहीं दिया है। ज्ञाता और ज्ञेय के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भीतर जो एकता श्रुति में बतलाई गई है, वह एकता स्वभाव सिद्ध है, प्रयत्न साध्य नहीं। इसलिये स्वभाव सिद्ध एकता को यत्न द्वारा प्राप्त करना नहीं है। वह यत्न विना हर हालत में सिद्ध है इस प्रकार श्रुति बोधन करती है। श्रुति ने कोई साधन नहीं बतलाया है, जिसके अवलम्बन से इस एकता को सिद्ध करना पड़े।

वेदान्त परिशीलन

सहज में आत्मस्वरूप का ज्ञान प्राप्त हो सके, इसी उद्देश्य से 'शांकर वेदान्त' तथा 'योगवाशिष्ठ' की सहायता से बुद्धि भ्रंश या भ्रम के हेतुभूत तीन प्रधान विषयों का यहाँ विचार किया जा रहा है। अद्वैत वेदान्त वाशिष्ठ ज्ञान शास्त्र में ही पूर्णता को प्राप्त हुआ है। 'योगवाशिष्ठ महारामायण' का अच्छी तरह से अभ्यास बिना किये किसी के लिये भी यथार्थ ज्ञान का उत्पन्न होना कठिन है। पहले भगवान् शंकर के प्रकरण ग्रन्थों का मनन करके फिर निदिध्यासन के लिये 'योग वाशिष्ठ' का अवलोकन करना चाहिये। फलतः यह ज्ञान हो सकेगा कि त्वं पदार्थ ही (जो जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति के अविकारी द्रष्टरूप से वर्तमान है वही तुम) अज्ञानवशात् जगत् स्रष्टा (तत्पदार्थ) है। तुम से अतिरिक्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किसी दूसरे आधिदैविक ईश्वर ने जगत् सृष्टि नहीं की है। तुम स्वयं ही जगत् सृष्टि करके फिर उसमें जीव बन कर प्रविष्ट हुये हो। जगत् के भीतर तुम ही अवस्थित हो। पञ्चभूतों में, नानाविध कार्यों में तुम ही एकमात्र सार वस्तु हो। यह जान कर बार बार इसका अभ्यास करने पर समस्त वासनाएँ (भोगवासना और भेद-वासना) शिथिल हो जाती हैं। और चिन्तन करने योग्य कोई पदार्थ न रहने से शुद्ध चैतन्य ही हृदय में स्फुरित हो जाता है। समस्त दृश्य मार्जनपूर्वक स्वतः सिद्ध आत्मानुभव (यानिदिध्यासन 'योगवाशिष्ठ' ग्रन्थ की सहायता से सहज में होता है। इस तरह योगवाशिष्ठ शांकर वेदान्त का परिपूरक है।

बुद्धिभ्रंश के हेतुभूत तीन विषय यह हैं—

१—जीव का स्वरूप क्या है ?

२—जगत् की सृष्टि किसने की है ?

३—अज्ञान किसे कहते हैं ?

(१) जीव का यथार्थ स्वरूप

अच्छी तरह विचार करने पर मालुम होता है कि जीव ब्रह्म का प्रतिबिम्ब नहीं है। ब्रह्म का अंश भी नहीं है। अविद्यादि उपाधि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वारा परिवेष्टित ब्रह्म का एक देश भी नहीं है। वह परिपूर्ण ब्रह्म-चैतन्य अविद्यादि उपाधि से तादात्म्यापन्न (तद्रूपता प्राप्त) होकर विद्यमान है। सुषुप्ति अवस्था में अज्ञान के साक्षीरूप में (अज्ञान प्रतिबिम्ब के प्रकाशकरूप में) विद्यमान रहने से वह प्राज्ञ (सर्व-साक्षी) कहा जाता है। सुषुप्तिकालीन दिव्य आनन्द का भोक्ता (या स्वाप्निक आनन्दमय) उससे प्रकाशित होता है। अतः वह 'सौषुप्त आनन्दमय' कहा जाता है। भोक्ता आनन्दमय जिससे प्रकाशित होता है और अज्ञातरूप में भी जो विषय का प्रकाश या अनुभव करता है वह अज्ञान मात्र से युक्त रहने पर भी सकल का साक्षी होने से परिपूर्ण चैतन्य है। यही मेरा यथार्थ स्वरूप है। मैं ही साक्षात् अनुभव करता हूँ (अर्थात् जानता हूँ) कि मैं सुखपूर्वक सोया था। सुषुप्ति का अभिमानी या भोक्ता आनन्दमय मेरा वास्तव-स्वरूप नहीं है। वह मेरा दृश्य है। द्रष्टा मैं ही मेरा निजी स्वरूप है।

साथ ही भोक्ता जिन अनेक विषयों को नहीं जानता, उन्हें भी मैं जानता हूँ (अनुभव करता हूँ)। 'नहीं जानता' इसका अर्थ है बुद्धिवृत्ति का अविषय या अगोचर। किन्तु उस अज्ञान को भी मैं जानता हूँ। अतः 'मैं' सर्वदा (ज्ञात या अज्ञात) सभी विषयों का प्रकाशक हूँ। मैं यदि अपूर्ण चैतन्य होता तो एक साथ सब विषयों का साक्षात् रूप से जान नहीं सकता। सूतसंहिता में कहा गया है— "पूर्णोऽहं सर्वसाक्षित्वात् सर्वदा परमार्थतः। अपूर्णो युगपत्सर्वं नवि-जानाति कश्चन"। इससे सिद्ध होता है कि मैं अज्ञान का प्रतिबिम्ब

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं, किम्वा अज्ञान से अवच्छिन्न भी नहीं हूँ। मैं अविद्यामात्र संयुक्त परिपूर्ण चैतन्य (प्रकाशक) हूँ।

●

(२) जगत्सृष्टि किसने की ?

जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं में अविकारी द्रष्टा रूप में जो पूर्ण चैतन्य विद्यमान है उस मैं से ही यह विचित्र जगत् उत्पन्न हुआ है। कैवल्य श्रुति कहती है—"पुरत्रये क्रीडति यस्तु जीवस्ततस्तु जातं सकलं विचित्रम्...." परिपूर्ण प्रकाश (चैतन्य) होते हुए भी अविद्यावशात् 'मैंने' ही जगतसृष्टि की है। सुषुप्ति अवस्था में दिव्य आनन्द के भोक्ता का प्रकाशक जो अज्ञान मात्र का साक्षी "मैं" है वह 'मैं' ही जगत का स्रष्टा हूँ। शिव गीता में राम को उपदेश दिया गया है—एतल्लिङ्गशरीरन्तु तप्तायःपिण्ड वद्यतः। परस्पराध्यासयोगात् साक्षिचैतन्यसंयुतम् ॥ तदानन्दमयः कोशो भोक्तृत्वं प्रतिपद्यते ॥ विद्याकर्मफलादीनां भोक्तेहामुत्रसंस्मृतः ॥" यह हुई सुषुप्त्यभिमानी भोक्ता की बात। इस अज्ञान प्रतिविम्ब का विम्बभूत और प्रकाशक जो मैं जिस में अज्ञान के साथ एकीकरण नहीं है, और अज्ञान मात्र का प्रकाशक है, वही मैं जगत का स्रष्टा हूँ, यह शिवजी राम को बतला रहे हैं—"यदाध्यासं विहायैष

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वरूपेणावतिष्ठते। अविद्यामात्रसंयुक्तः साक्ष्यात्मा जायते तदा। द्रष्टान्तःकरणादीनामनुभूतेः स्मृतेरपि॥" अविद्यामात्र से सम्बन्ध होने पर भी उस से अध्यास नहीं है। वह सौषुप्त आनन्दमय आकाश अन्तःकरण आदि समस्त जगत का स्रष्टा है। पञ्चदशी में भी यह बात कही गई है—"सौषुप्तमानन्दमयं प्रकम्यैवं श्रुतिर्जगौ। एष सर्वेश्वर इति स्वयं वेदोक्त ईश्वरः" अन्तर्यामी च सर्वज्ञो जगद्योनिः स एव हि। अयं यत्सूयते विश्वं तदन्यथयितुं पुमान्। न कोऽपि शक्तस्तेनायं सर्वेश्वर इति श्रुतः॥ एवमानन्दविज्ञानमया वीश्वर जीवकौ (६।१५८, १५७, १६०, २१२)। इस प्रकार आनन्दमय हैं ईश्वर और विज्ञानमय जीव। 'मैं' भी जगत् सृष्टि करके फिर जीवरूप में संसरण करता हूँ।

तैत्तिरीय श्रुति (ब्रह्मवल्ली) में कहा है—कि विज्ञानमय कर्तृत्वसंयुक्त है और आनन्दमय भोक्तृत्वमात्र संयुक्त है। अज्ञानमात्र सम्बन्ध सौषुप्त आनन्दमय जगदीश्वर हैं। और अज्ञानविनिर्मुक्त चैतन्य तूरीयात्मा हैं। तैत्तिरीय श्रुति (भृगुवल्ली) तथा माण्डूक्य श्रुति में बतलाया गया है कि विज्ञानमय कर्तृता भोक्तृता युक्त है प्राज्ञ या सौषुप्त आनन्दमय निखिलेश्वर हैं। अज्ञान विनिर्मुक्त चैतन्य तुरीय प्रत्यगात्मा है। अतः देखिये कि अज्ञान से संयोग या तादात्म्य प्राप्ति के फलस्वरूप परिपूर्ण चैतन्य होते हुये भी 'मैं' प्राज्ञ एवं सौषुप्त आनन्दमय नाम से किस तरह अभिहित होता हूँ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(३) अज्ञान किसे कहते हैं ?

अच्छी तरह से विचार करने पर ज्ञात होता है कि अज्ञान भाव स्वरूप नहीं है। वह शक्ति या द्रव्यरूप भी नहीं है। वह ज्ञान का प्रागभावरूप है। अर्थात् आत्मचैतन्य का यथावत् प्रकाशित न होना अज्ञान कहा जाता है। ज्ञान का प्रागभाव की सहायता से अन्यरूप में भासमान आत्मा चैतन्य ही अविद्या अज्ञान नाम से कहा जाता है। यह जगद्भ्रम का सहकारी कारण मात्र है। सृष्टि का द्वार कारण भी नहीं। और उपादानकारण भी नहीं है। "तुच्छ-मिदं रूपमस्य' यह श्रुति आत्मशक्ति एवं जगत् प्रकृति मायारूप भावात्मक दोनों अर्थों का निराकरण कर रही है। पूर्ण आत्मचैतन्य का यथावत् प्रकाशित न होना—इस प्रतिवन्धक के कारण आत्म-चैतन्य—अरूप में भासमान होता है। यही जगत् भ्रम का सहकारी कारण है। जगत् किसी शक्ति से या द्रव्यरूप उपादान से निर्मित नहीं हुआ है।

प्रश्नोपनिषद् में कहा गया है—"स यो ह वै तदच्छायमशरीर-मलोहितशुभ्रमक्षरं वेदयते यस्तु सौम्य ! स सर्वज्ञः सर्वो भवति" अर्थात् जगत के स्रष्टा अक्षर परमात्मा को जो निजरूप में जान लेते हैं वे सर्वज्ञ होते हैं। निजस्वरूप यह अक्षर परमात्मा कैसे है ? वे 'अच्छायम्' अर्थात् तमोरूप अज्ञान से वर्जित हैं। वे अशरीर हैं। वे अलोहित है (किसी गुण से युक्त नहीं हैं)। वे शुद्ध निरावरण अर्थात् भावरूप किसी वस्तु से अस्पृष्ट हैं। इस प्रकार आत्मस्वरूप में भावात्मक अज्ञान का सर्वथा निषेध किया गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते" इस श्वेताश्वतर श्रुति में जिस शक्तिकी चर्चा है वह पुरुष परम्परागत किम्वदन्ती के ऊपर आधारित है। वह केवल एक से दूसरे पुरुष क्रम से सुनाई पड़ती है। किसी प्रमाण पर प्रतिष्ठित नहीं है। ऐसा अर्थ रामानन्द ने 'ईक्षतेर्नाशब्दम्' सूत्र के शांकर भाष्य की व्याख्या में किया है। "तेध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्ति स्वगुणौनिगूढाम्" यह श्वेताश्वतर श्रुति भी आत्मस्वरूप की भ्रान्त दृष्टि में जो शक्तिमत्ता और रूपमत्ता प्रतीत होती है उसी का अनुवाद करती है। आत्मस्वरूप में वस्तुतः कोई रूप या गुण नहीं है। वह निर्गुण एवं निरूप है। "नस्थानतोऽपि परस्योभयलिङ्गं सर्वत्र हि" इस ब्रह्मसूत्र (३।२।११) में भी यही सिद्धान्त प्रकट किया गया है।

योगवाशिष्ठ में भी अज्ञान का अभावात्मक स्वरूप सर्वत्र प्रदर्शित हुआ है। उदाहरणार्थं निर्वाण उत्तरार्ध (१४७, १९, २१, २३) अथाह भगवंतत्र तदालिजननिर्वृतः। गृहीतवासनो नूनं विस्मृतप्राक्तनस्मृतिः (मुनि कहते हैं कि निजस्वरूप का विस्मरण होने से मैं स्वप्न दृष्ट कुटुम्ब परिजन के स्नेह में आबद्ध हो गया था)। "यस्तु चिन्मात्रगगनं सर्वमित्येव बोधवान्। द्वैतेन बध्यते नेह सोऽङ्गतिष्ठति केवलः। न नश्यति स्मृतिर्यस्य विमला बोध शालिनी अयं द्वैत पिशाचस्तं मनागपि न बाधते। येषा मभ्यासयोगेन साधुसच्छास्त्रसंगमैः। उदेति बोधधीर्भूयो या विस्मरति नोदयम्"। मुनि कहते हैं कि निज स्वरूप यथावत् प्रकाशित होने पर वासनामय द्वैत प्रपञ्च के ग्रहण में तत्परता नष्ट हो जाती है। ऐसे ज्ञानी जन सदा निज यथार्थस्वरूप में स्थित होते रहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गाधि उपाख्यान में और चूडाला के उपाख्यान में भी अविद्या का यही अभावात्मकरूप उपदिष्ट हुआ है।

स्वरूप का प्रमाद या अनवधारण ही यदि अविद्या या अज्ञान है तो मुमुक्षु सदा निजस्वरूप के अनुसन्धान में रत रहेगा। उसका यथार्थस्वरूप परिपूर्ण प्रकाश या अखण्ड अनुभव है। कोई आधिदैविक शक्तिशाली पुरुष सामग्री लेकर इस विश्व का निर्माण नहीं करता। 'मैं' ही निज में—"स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णुः स्वयमिन्द्रः स्वयं शिवः। स्वयं विश्वमिदं सर्वं स्वस्मादन्यन्नकिञ्चन" हूँ। द्वैत प्रपञ्च का कठिनत्व कठोरत्व कुछ भी नहीं है। वह वासना द्वारा उपस्थापित होकर चैतन्यरूप आदर्श में अंकित हुआ है। समस्त प्रपञ्च इस प्रकार अभाव एवं शून्यगर्भ है। मिथ्या पदार्थ के चिन्तन से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। ऐसा समझ लेने पर अनात्मवासना शिथिल होती है और आत्मस्वरूप का अवधारण होने लगता है। परिणामस्वरूप अनवधारण निवृत्त हो जाता है और आत्मस्वरूप में स्थिति होती है। एवं समस्त जगत् सदा के लिये विलीन हो जाता है।

आभासवाद (ब्रह्म प्रतिबिम्बवाद) ईश्वरवाद एवं अज्ञान की भावरूपता चित्तशुद्धि के अनुकूल हैं। मुमुक्षु पुरुष के लिए हितकर नहीं है। जीव सुषुप्तिकालीन अज्ञान का साक्षी है (अज्ञान प्रतिबिम्ब नहीं)। सौषुप्त आनन्दमय जगत् का सृष्टि कर्ता है और अज्ञान ज्ञान का प्रागभावरूप है। यह त्रिविध शांकर वाशिष्ठ में अनुमोदित उत्तम सिद्धान्त मुमुक्षु के लिए अत्यन्त हितकर है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाच्यैकता

प्रश्न—'सर्वविज्ञान' ग्रन्थ में बताया गया है कि "सवा एष महानज आत्मा" इत्यादि श्रुतियों का अर्थ ग्रहण करने में समर्थ उत्तम मुमुक्षु पुरुषों के लिये शास्त्र में वाच्यैक्य का उपदेश किया गया है। जीवित दशा में यदि जीव की ईश्वर से एकता हो सकती है तो मैं सर्वज्ञरूप से प्रतिभात क्यों नहीं होता ?

उत्तर—सब संशयों का परित्याग करके श्रद्धा एवं सावधानता-पूर्वक श्रवण करो—"उदरमन्तरं कुरुते", "भीषास्माद् वातः पवते" इत्यादि श्रुति में कथित अपने से भिन्न रूप में गृहीत तत्पदवाच्य, अन्तर्यामी से अवश्य जायमान भेद की निवृत्ति के लिये वाच्यैक्य का उपदेश किया जाता है। अज्ञान तथा उसके कार्य से तुम्हारा किसी प्रकार से सम्वेष्टन सम्भव न होने से तुम स्वयं व्यापक हो। अतः स्वरूप विषयक अज्ञान में तादात्म्य के कारण सकल प्रातिभासिक आकाशादि प्रपञ्च के ईश्वर भी अज्ञानयुक्त तुम्हीं हो।[१] अतएव सब विषयों का ज्ञान भी तुम में विद्यमान है। जिस तुरीय स्वरूप के विना मूल अज्ञान और उसका कार्य सिद्ध नहीं हो सकता, उसी सुखरूप साक्षी अन्तरात्मा की अभिज्ञना के बिना तुम में सर्व-

---

टिप्पणी (१) सौषुप्त जीव जगत् का कारण और सर्व व्यापी है, यह बात 'सृष्टि समीक्षा' निबन्ध में बतलाई गई है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ज्ञता का बिलकूल अभाव नहीं है। तुम किसी भी समय अल्पज्ञ नहीं हो। अपने आपको अज्ञात किसी वस्तु के न रहने पर भी आवरण का कारण[२] 'यह है' ऐसा भ्रम उत्पन्न होने से उसको अप्रतीति अवस्था में 'इसे मैं नहीं जानता' ऐसो स्थूल (आपात ज्ञान) दृष्टि में तुम मिथ्या ही कहते हो।

प्रश्न—अभिज्ञ पुरुष अल्पज्ञ कैसे प्रतीत हो सकता है ?

उत्तर—यह असम्भव नहीं है। तुम ही स्वप्न में तैजसरूप से अल्प विषय के ज्ञाता प्रतीत होते हो। स्वप्न दृष्ट हाथी आदि ऐकान्तिक सत्ता के अभाव का ज्ञान न होने से तुम कहते हो कि इसका पार्श्वभाग तुम्हें दिखलाई नहीं पड़ता। असत् हाथी आदि का पार्श्वभाग न देख सकना केवल स्थूल दृष्टि में अल्पज्ञता का परिचायक है। वास्तव में तुम्हारी इस विषय में किसी प्रकार अल्पज्ञता उपपन्न नहीं होती।

प्रश्न—इस सम्बन्ध में क्या कोई अन्य दृष्टान्त भी है ?

उत्तर—(अपने से भिन्न) आधिदैविक पुरुष को जो ईश्वर मानते हैं उनका अभिमत दृष्टान्त सुनो—अपञ्चाकृत पञ्चमहाभूत

टिप्पणी (२) आवरण कोई सत्य वस्तु नहीं है, नित्य सिद्ध आत्मा केवल वेदान्त प्रमाण की सहायता से निरवरण रूप में भासित होता है, यह सर्व विज्ञान ग्रन्थ में बतलाया जा चुका है। इस विषय में 'आनन्द तत्व मीमांसा' द्रष्टव्य है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और उसके कार्य लिङ्ग शरीररूप उपाधि से युक्त हिरण्यगर्भ नामक आधिदैविक पुरुष स्थूल भूत आदि का द्रष्टा होने से 'ईश्वर' संज्ञा को प्राप्त होता है। और स्वसृष्ट प्रपञ्च और उसके कारण में 'अहम्' अभिमानवश जीव मरण को भी प्राप्त होता है। उसी प्रकार तुम भी—"यदा सुप्तः स्वप्नं न कञ्चन पश्यति" इत्यादि श्रुत्युक्त प्रकार से जगत के स्रष्टा होने से ईश्वरत्व को प्राप्त होते हो और निज सृष्ट पदार्थ एवं उसके कारण अविद्या में अहं बुद्धि (तादात्म्याध्यास) करने के कारण जीव कहे जाते हो। फलस्वरूप अस्मत् पद के वाच्य जगत के स्रष्टृत्व एवं संसारित्व दोनों के आश्रय होने 'तत्' और 'त्वं' दोनों पदों के वाच्यार्थ की एकता सिद्ध होती है।

प्रश्न—इससे क्या सिद्ध हुआ ?

उत्तर—जिस प्रत्यक् चैतन्य में ईश्वर भाव का आरोप होता है, उसी में जोवभाव का भी आरोप होता है। प्रत्यगात्मा में ईश्वरत्व का अध्यास हुये विना जीवत्वाध्यास सम्भव नहीं है। इस विषय में "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्रावीशत्", "सर्वाणि रूपाणि विचित्य धीरो नामानि कृत्वाऽभिवदन् यथास्ते" इत्यादि श्रुति वचन प्रमाण हैं।

प्रश्न—'तत्' और 'त्वं' पद के वाच्यार्थ का इस प्रकार यदि अत्यन्त अभेद सिद्ध होता है तो उसका विभिन्न रूप में व्यवहार कैसे सम्भव है ?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तर—'सृष्टि समीक्षा' निबन्ध में प्रदर्शित रीति से सुषुप्त्यवस्थापन्न तुम्हारी—परमेश्वरता के विना—जीवभाव प्राप्ति सम्भव नहीं है। अतः जीव ईश्वरभाव में भेद केवल मूढ़ मनुष्य ही मानता है। इस प्रकार स्वप्न तथा जागरण में तुम निर्माता ईश्वर होने के कारण पुनः जीवभाव को प्राप्त होकर सांसारिक सुख-दुःख भोग करते हो। कर्तृत्व के विना जिस प्रकार जीव का भोक्तृत्व नहीं हो सकता, उसी प्रकार जगत् सृष्टि के विना तुम्हारा सुख-दुःख भोग भी उत्पन्न नहीं होता।

प्रश्न—अच्छा, मैं यदि जगन्निर्माता हूँ तो मेरी सर्वज्ञता प्रतीत न होकर अल्पज्ञता क्यों प्रतीत होती है ?

उत्तर—अपने में आरोपित सब वस्तुओं के अवभासक तुम में सर्वज्ञता सर्वदा सिद्ध है। किन्तु स्वप्न में जैसे आरोपित पदार्थों में 'गजादि का पार्श्वान्तर अवश्य ही विद्यमान है' ऐसा भ्रम मान कर 'उसे मैं नहीं जानता' इस प्रकार वृथा ही सर्वज्ञता अभिभूत हो जाती है; वैसे ही जाग्रत में अपने में आरोपित आकाशादि प्रपञ्च प्रातिभासिक होने के कारण तुम्हारी सर्वज्ञता अक्षुण्ण ही रहती है।

प्रश्न—एक ही व्यक्ति का सर्वज्ञ एवं अल्पज्ञ होना किस तरह सम्भव है ?

उत्तर—स्वप्न में जिस प्रकार स्वयं पिता आदि का कल्पक होकर भी पुत्ररूप में प्रतीत होता है, उसी प्रकार जाग्रत में भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आध्यासिक सर्वज्ञता एवं अल्पज्ञता में परस्पर किसी प्रकार का विरोध नहीं रह सकता। अतः एक ही पुरुष में (मिथ्या) सर्वज्ञता एवं अल्पज्ञता दोनों धर्म उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न—इस विषय में क्या अन्य भी प्रमाण है ?

उत्तर—हाँ, सर्वज्ञता अल्पज्ञता समानविषयक होने से अनुमान की भी सहायता से वाच्यैक्य प्रमाणित होता है। स्वप्न में जिस प्रकार प्रपञ्च तथा उसका द्रष्टा दोनों दृश्य कोटि के भीतर आ जाते हैं उसी प्रकार जगत में जो सर्वज्ञता है, वही अल्पज्ञता और जो अल्पज्ञता है; वही सर्वज्ञता सिद्ध हो सकती है, क्योंकि "तस्मादस्ति महादेव एव साक्षात् स्वयं प्रभुः। अनन्तरूपः सम्पूर्णो न ततोऽन्यत्तु किञ्चन" इस 'ब्रह्मगीता' के वाक्य से आत्मा अनात्मा में सर्वज्ञता-अल्पज्ञता एक देशवाची 'किञ्चन' शब्द के अन्तर्भूत सकल दृश्य प्रपञ्च को—विषय करती है; अतः दोनों ही समानरूप से मिथ्या है। अतएव उनमें परस्पर विरोध सम्भव नहीं है।

प्रश्न—"यः सर्वज्ञः सर्ववित्" इस श्रुति में जगत् स्रष्टा के—अपने नित्य शुद्धत्वादि एवं अपने में आरोपित सकल द्वैत, इन दोनों विषयों का ज्ञान विवक्षित हुआ है, केवल आरोपित दृश्यमात्र का ज्ञान नहीं; क्योंकि "सोऽकामयत बहुस्याम्" इस श्रुति से स्वात्म-विषयकज्ञानवत्ता भी दृष्ट होती है।

उत्तर—यह नहीं कहा जा सकता। अपने में जगत् का अध्यारोप करनेवाले का—अध्यास के लिए अपेक्षित जो अहंरूप सामान्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ज्ञान वह 'बहुस्याम्' इस श्रुति से सिद्ध होने पर स्वप्न सृष्टि के समय तैजस पुरुष की तरह जगत् सृष्टि के आरम्भकाल में ईश्वर को भी निर्विशेष स्वरूप का ज्ञान नहीं हो सकता—"तया दुर्घट-कारिण्या तादात्म्येनैव सङ्गतम्। कारणं सकलस्रष्टृ सर्वसंहर्तृ चास्तिकाः ॥" इस ब्रह्मगीता वचनानुसार माया से तादात्म्या-ध्यासयुक्त पुरुष (ईश्वर) को माया एवं अपने यथार्थस्वरूप का विवेक सम्भव नहीं है।

प्रश्न—"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" केवल इस श्रुत्युक्त स्वरूप लक्षण के ज्ञान से क्या मुमुक्षु कृतार्थ नहीं हो सकता ?

उत्तर—ब्रह्म के तटस्थ तथा स्वरूप लक्षण, इन दोनों का जो अनुभव कर लेता है, ऐसे उत्तम मुमुक्षु पुरुष को ही सकल सन्देह निवृत्तिपूर्वक ज्ञानानन्द की प्राप्ति सम्भव होती है। "पुरत्रये क्रीडति यस्तु जीवः" "मय्येव सकलं जातम्" इत्यादि श्रुतियों में ब्रह्म का तटस्थ लक्षण बतलाया गया है। तटस्थ एवं स्वरूप लक्षण अपने में न जानने पर "चतुर्मुखेन्द्रदेवेषु मनुष्याश्वगवादिषु। चैतन्यमेकं ब्रह्मातः प्रज्ञानं ब्रह्म मय्यपि ॥" इस महावाक्योपनिषद् में उक्त प्रकार से अपने में केवल स्वरूप लक्षणभूत चिद्रूपत्वावगाही ज्ञानद्वारा सर्ववेत्ता नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि आकाशादि प्रपञ्च में प्रातिभासिकता ज्ञान के अभावरूप दोष के कारण परमेश्वर सम्बन्धी ज्ञान के एक देशमात्र का ग्रहण होने से अर्थात् "यः सर्वज्ञः सर्व-वित्" इस श्रुति के अन्तर्गत सर्वाभिज्ञता, सर्व वस्तु अवभासकता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

या सर्वात्मकता की उपलब्धि अपने में न होने के कारण अपना सर्व वेत्तृत्व सम्भव नहीं है।

प्रश्न—इस विषय में क्या कोई शास्त्रोक्त दृष्टान्त है ?

उत्तर—तत् और त्वं पद की वाच्यैकता लक्ष्यैकत्त दोनों प्रकार के बोध से वरुण पुत्र भृगु कृतकृत्य हो गये थे। पिता से ब्रह्म का तटस्थ लक्षण सुन कर परिच्छिन्न अन्नमय, प्राणमय, और मनोमय की तरह कर्तृत्व भोक्तृत्वरूप दोनों धर्मों से विशिष्ट कोश-द्वयरूप विज्ञानमय में भी उसकी प्राप्ति न होने से अन्त में सौषुप्तिक आनन्दमयरूप अपने में से उसे प्राप्त करके (अज्ञानता दात्म्यापन्न अपने में तटस्थ लक्षण का अनुभव करके और उसके आनन्द, सच्चिद्रूप होने से आनन्दमय को ब्रह्मरूप में जान कर अर्थात् अपने में तटस्थ एवं स्वरूप दोनों प्रकार के लक्षणों का प्रत्यक्ष अनुभव करके—अपने आपको सर्वज्ञ और सर्वात्मा जानकर) वारुणि उपशान्त हो गये थे ("उपनिषद् का अनुभव (तैत्तिरीय)" देखिये)। जो मन्दबुद्धि मनुष्य जीव ईश्वर का स्वरूप परस्पर विरुद्ध मानकर अपने में तटस्थ ब्रह्मलक्षण की योजना करने में असक्त होता है, वह अज्ञतारूप दोष के कारण अपने चिद्रूपत्व ज्ञान से सर्वात्मत्वरूप उत्कृष्ट शान्ति प्राप्त नहीं कर सकता।[1]

टिप्पणी (१) दक्षिणामूर्ति स्तोत्र में बतलाया गया है—"सर्वात्मत्वमहा-विभूतिसहितं स्यादीश्वरत्वं स्वतः सिद्ध्येत् तत् पुनरष्टधा परिणतं चैश्वर्यमव्याहतम्।" जगत् का प्रत्यक्ष अभाव अनुप-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रश्न—इस वैदिक दृष्टान्त के अनुकूल क्या कोई लौकिक दृष्टान्त भी है।

उत्तर—हाँ, कोई सचक्षु पुरुष आप्त पुरुष से कमल की पूर्ण

लब्धि सिद्ध होने पर प्रत्यगात्मा का प्रतिबन्धरहित साक्षात्कार सम्भव होता है, अन्यथा नहीं। सूक्ष्मातिसूक्ष्म दृश्य का—अहंकार ममकार कर्तृत्व आदि सब अभिमानों का हेतुभूत ज्ञानविरुद्ध संस्कारसमूह का—जब तक स्फुरण होता है तब तक वासनाक्षय एवं मनोनाश का प्रयत्न करना पड़ेगा। इससे निर्विकल्प समाधि की प्रकृष्ट परिणाम दशा में—विषयाकार वृत्तियों के निश्शेष निरोधकाल में—अशेष दृश्य के अभाव से उपलक्षित शुद्ध, अकर्ता, अभोक्ता, असंग, अद्वितीय प्रत्यगात्मा स्वात्मरूप से स्वयं भासमान होता है। अर्थात् जगत्सम्बन्धी बाध के अवधिरूप में आत्मा का साक्षात्कार उदय होने पर साक्षात्कार वृत्ति भी कतकरेणु की तरह अधिष्ठान आत्मा में स्वयं विलीन हो जाती है और अन्त में केवल प्रत्यक् चैतन्य स्वरूप में स्वयं भासमान होता है। "एकान्ते सुखमास्यतां परतरे चेतः समाधीयतां पूर्णात्मा सुसमीक्षतां जगदिदं तद्बाधितं दृश्यताम्॥" आचार्य के इस उपदेश का भी यही मर्म है। "नान्यत् कार्यं किमपि च ततः कारणाद्भिन्नरूपम्, एवं सर्वं समरसतया त्वं पदं तत्पदार्थं" इत्यादि शुकोक्ति भी इस विषय में उदाहरण है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:MIDF

चन्द्र के साथ सामानाकारता और आह्लादकरता (स्वरूप लक्षण) तथा मध्यवर्ती मेरु कर्णिकाकार एवं हरिद्राभ बीजकोशवत्ता (तटस्थ लक्षण) सुनकर दोनों प्रकार के लक्षणों की कमल पुष्पां में योजना करके तत्सम्बन्धी पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेता है, परन्तु एक अन्ध पुरुष पूर्वोक्त तटस्थ लक्षण का आपात ग्रहण मात्र करके सर्वज्ञ नहीं हो सकता।

प्रश्न—अच्छा, जीव तथा ईश्वर को प्रतिबिम्ब मानने पर वाच्यार्थ का ऐक्य किस तरह हो सकता है ?

उत्तर—माया में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब ईश्वर और मन में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब जीव है—यह प्रतिबिम्ब पक्ष है। ईश्वरोपाधि माया का मन विकार मात्र है। अतः मायागत ब्रह्म प्रतिबिम्ब ही मनोगत ब्रह्म प्रतिबिम्ब है। अतएव दोनों प्रतिबिम्बित चैतन्य की एकता सिद्ध होती है। दूध के दहि आदि रूप में परिणत होने पर जैसे क्षीरगत प्रतिबिम्ब ही दध्यादिगत प्रतिबिम्ब रूप में दृष्ट होता है; दार्ष्टान्तिक में भी वैसे ही समझना चाहिये। प्रतिबिम्बत्व पक्ष में भी जीव तथा ईश्वर की अभेद सिद्धि के लिये लक्षणा वृत्ति का आश्रय अनावश्यक है। क्योंकि जीव एवं ईश्वर की उपाधि—मन और माया घट एवं मृत्तिका की तरह अभिन्न स्वरूप है।

प्रश्न—जीव अंश है और ईश्वर अंशी, इस पक्ष में वाच्यैक्य किस तरह सिद्ध हो सकता है ?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तर—जिस तरह भूमि के सब अंश में भूमिभाव विद्यमान रहता है और अंशसमूह से पृथक् भूमि की सत्ता सम्भव नहीं है।[१] इसीलिये नाना अंशयुक्त भूमि में अंशता सिद्ध होती है, उसी तरह परिपूर्ण अंशी प्रत्यगात्मा में जीवादि अंशभाव सम्भव होता है। इस विषय में "त्वं स्त्री त्वं पुमानसि", "सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेय" इत्यादि श्रुतियाँ प्रमाण हैं। अतएव अंशाशित्व पक्ष में भी वाच्यैक्य सिद्ध होता है।

प्रश्न—अच्छा, क्या वाच्यैकता तर्क से भी सिद्ध की जा सकती है?

उत्तर—हाँ, 'दृश्यते तु' इस सूत्रार्थसम्बधी प्रस्ताव के समय भाष्यकार ने कहा है कि श्रुत्यनुगृहीत तर्क का ही अनुभव सम्बन्धी अंगरूप में आश्रय करना पड़ता है। स्वप्न एवं जागरण, दोनों का परस्पर व्यभिचार देखा जाता है, अतः आत्मा का असंगत्व और सुषुप्ति में प्रपञ्च परित्यागपूर्वक सदात्मरूप में अवस्थिति से आत्मा का प्रपञ्चराहित्य और सद्रूपत्व सिद्ध होता है। प्रपञ्च ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है, इसलिये कार्य कारण की अनन्यता के अनुसार उसकी ब्रह्म से अभिन्नता भी सिद्ध होती है। इस तरह भाष्योक्त

टिप्पणी (१) व्यापक भूमिभाव भूमि के विभिन्न अंशों में विद्यमान होने पर व्याप्य अंशभाव भूमि में विद्यमान न हो तो वाच्यैक्य सिद्ध न होगा। इस शंका का समाधान किया गया है। क्योंकि अंशों से अतिरिक्त भूमि की सत्ता नहीं है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तर्क से भी अवस्थात्रययुक्त जीव की ही तत्कारणता अवगत होती है। अतएव 'स्वप्न में' जैसे तैजस है वैसे ही जाग्रत में मैं जगत का उपादान कारण हूँ, इस तर्क की सहायता से भी 'तत्' और 'त्वं' पद का वाच्यैक्य सिद्ध होता है। "एतत् सौम्य तदा सम्पन्नो भवति", "प्राज्ञेनात्मना संपरिष्वक्तो न वाह्यं किञ्चन वेद नान्तरम्" इत्यादि श्रुतियाँ उदाहृत भाष्य के मूल हैं।

प्रश्न—अल्पज्ञ जीव की सर्वज्ञता किस प्रकार संभव है ?

उत्तर—स्वप्न में जागरण का अभाव होने पर अपना अभाव नहीं होता। अतएव हम नित्य असंग हैं। और सौषुप्त हम में सब कार्यों का विलय होता है। इसलिये अखिल प्रपञ्च के कल्पक भी हम ही सिद्ध होते हैं। अतः स्वप्न के समय तैजस की तरह जाग्रत में—मैं सर्वज्ञ और निखिलात्मक हूँ, इस तरह प्रथमोपपत्ति बतलाई गई है। "यः सर्वज्ञः स सर्ववित्" इस मुण्डक श्रुति से निर्दिष्ट सर्वात्मा ईश्वर "पुरत्रये क्रीडति यस्तु जीवस्ततस्तु जातं सकलं विचित्रम्" इस कैवल्य श्रुति द्वारा जीवरूप में बोधित होता है, अतः जीव की स्वसृष्ट सृष्टिरूप सब वस्तुओं की अवभासकता (सर्वज्ञता) श्रुतिसिद्ध होने से 'तत्' और 'त्वं' पद का वाच्यैक्य—दूसरी उपपत्ति की सहायता से भी सिद्ध होता है[1]।

टिप्पणी (१) 'सृष्टि समीक्षा' 'आनन्द तत्वमीमांसा' और 'सर्वविज्ञान' शीर्षक निबन्धों में प्रदर्शित रीति से और 'माण्डूक्य' श्रुति के अनुसार सर्ववस्तुविषयक ज्ञानरूप जीव की सर्वज्ञता प्रमाणित होती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दृश्य-सृष्टि दृष्टि-समकालीन होती है, इस प्रक्रिया के अनुसार भी जीव सर्ववस्तुविषयक सर्व ज्ञान का आश्रय (सर्वज्ञ) है, यह सिद्ध होता है। इसलिये वाच्यैक्य अप्रमाणिक नहीं है।

प्रश्न—इस विषय में क्या कोई बृद्धसम्मति भी है ?

उत्तर—"देहयोगाद्वा सोऽपि" अर्थात् जीव और ईश्वर अभिन्न होने पर भी देहयोगवश (देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और विषयानुभव द्वारा (जीव का ज्ञानैश्वर्य तिरोभूत रहता है। इस सूत्र एवं उसके भाष्य से ज्ञात होता है कि जीव के अपने में आरोपित सकल जगत की अवभासकता (सर्वज्ञता) और सर्व जगत की कारणता (ऐश्वर्य) इन दोनों का तिरोधान—त्वं पदवाच्य की तत्पदवाच्यता होने से ही—हो सकता है, अन्यथा नहीं। "राहुग्रस्तदिवाकरेन्दुसदृशो मायासमाच्छादनात्, सन्मात्रं करणोपसंहरणतो योऽभूत् सुषुप्तः पुमान् ॥ प्रागस्वाप्समितिप्रबीध समये यः प्रत्यभिज्ञायते तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥" अर्थात् सृष्टि स्थिति संहार में समर्थ (दक्षिण) और अशरीर (अमूर्ति) जो सौषुप्त प्राज्ञ उसका—नमः शब्द से कथित विज्ञानमय के साथ ऐक्यानुसन्धान करता हूँ—"सुखमहमस्वाप्सम्" (मैं सुखपूर्वक सोया था) इस प्रकार सौषुप्त और विज्ञानमय की अभेद प्रत्यभिज्ञा बलात् भी वाच्यैक्य सिद्ध होता है। संक्षेपाचार्य और अद्वैतसिद्धिकार के मत में "[illegible]स्वाप्सम्" इत्यादि प्रत्यभिज्ञा के कारण विज्ञानमय तथा आनन्दमय की उपाधिविशिष्टता होने पर भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एकता सिद्ध होती है, इस प्रकार भगवत्पाद, विद्यारण्य, संक्षेपाचार्य और अद्वैतसिद्धिकार की सम्मति प्रदर्शित की गई है।

प्रश्न—"सुखमहमस्वाप्सम्" इस परामर्श के विषय सुषुप्ति अवस्था से विनिर्मुक्त प्राज्ञ के साथ जाग्रत् कालिक अन्तःकरण-साक्षी का अभेद है। इसलिये उस से लक्ष्यैकत्व ही अवगत होता है, वाच्यैकत्व नहीं।

उत्तर—यह ठीक नहीं है। श्रीगौडपादाचार्य कारिका में लिखते हैं कि अर्थात् विश्व तैजस (और उनके दो शरीर) प्राज्ञ के उपाधिभूत उपादान मूल अज्ञान द्वारा अनुस्यूत (अनुप्रविष्ट) होने से विश्व और तैजस अज्ञान एवं उसके कार्यरूप उपाधियुक्त सिद्ध होते हैं। पुनश्च विश्व, तैजस और उनके शरीर सुषुप्ति दशा में प्राज्ञ और अविद्यारूप में अवस्थित होते हैं। अतएव वाच्यैक्य सिद्ध होता है। इसके उपरान्त "द्वौ तौ तुर्ये न सिद्ध्यतः" इस चतुर्थ पाद में लक्ष्यैक्य का उपदेश किया गया है। आध्यात्मिक और आधिदैविक भेदभ्रम वाच्यैक्य ज्ञान का प्रतिबन्धक होने से उसका निरसन भगवत्पादकृत 'पञ्चीकरण' में और उसके व्याख्यान रूप 'वार्तिक' में स्पष्ट किया गया है—"विश्वं वैराजरूपेण पश्येद्भेदनिवृत्तये। हिरण्यगर्भरूपेण तैजसं चिन्तयेद् बुधः॥ जगत्कारण-रूपेण प्राज्ञात्मानं विचिन्तयेत्। विश्वतैजससौषुप्तं विराट्सूत्राक्षरात्मभिः॥ विभिन्नमिव संमोहादेकं तत्वं चिदात्मकम्। विश्वादिकत्रयं यस्माद्वैराजादित्रयात्मकम्। एकत्वेनैव सम्पश्येदन्याभाव-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रसिद्धये ॥ 'विवेक चूडामणि' में भी बतलाया गया है—स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णुः स्वयमिन्द्रः स्वयं शिवः। स्वयं विश्वमिदं सर्वं स्वस्मा दन्यन्नकिञ्चन ॥ इस प्रकार सप्रयोजन त्रिविध वाच्यैक्य—विश्वादित्रय की वैराजादि त्रय से एकता-और प्राज्ञ का तैजसादि के साथ ऐक्य भी प्रमाणित हो गया। "अजामेकां लोहित कृष्णशुक्लाम्" "अहमिमास्तिस्रो देवता अनेन जीवेनात्मनानु प्रविश्य" इत्यादि श्रुति भी वाच्यैक्य सिद्ध करती है।

प्रश्न—आधिदैविक तत्व के विना आध्यात्मिक जीव को 'तुम यह हो' ऐसा उपदेश नहीं दिया जा सकता। अतः जीव की सर्वेश्वरता किस प्रकार स्फुरित होगी ?

उत्तर—"जिस को तुम पहले नदी में डूब गया समझते थे, वही दशवाँ व्यक्ति तुम ही हो"। यहाँ पर उद्देश्यभूत स्वात्मातिरिक्त दशम पुरुष न होने पर भी अपने में ही दशमत्व ज्ञान सम्भव होता है। "हे राधेय कर्ण ? तुम वस्तुतः कुन्तीपुत्र सूर्यपुत्र हो" यहाँ पर स्वातिरिक्त अन्य व्यक्ति का अग्रहण होने पर भी कर्ण को अपने में ही कौन्तेयत्व और सूर्यपुत्रत्व का बोध सम्भव हो सकता है अथवा "हे व्याध ! तुम राजपुत्र हो" यहाँ व्याधकुल में प्रतिपालित राजपुत्र ने "मैं व्याध हूँ" इस भ्रम से गृहीत निज शरीर में तद् अतिरिक्त अन्य शरीर की अपेक्षा के विना ही अपना ऐश्वर्य प्रत्यक्षरूप से जान लिया था। उसी प्रकार आधिदैविक तत्व के विना जीव महावाक्य द्वारा अपने में ही तिरोभूत सर्वेश्वरत्व आदि भावों का पुनः अनुभव कर सकता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रश्न—अध्यात्ममात्र एक प्रत्यक् चेतन ही तत् और त्वं पद का वाच्य है। क्या यह श्रुति का अभिप्रेत है ?

उत्तर—हाँ, "अन्योऽप्येवं यो विदध्यात्ममेव" यह कठवल्ली वाक्य अर्थात् "अध्यात्ममेव यो वेत्ति सर्ववीजतया स हि मुक्तः स्यात्" (अध्यात्म ही सर्वोपादान है, अन्य आधिदैविक परमेश्वर नहीं है, ऐसा जो जानता है वह निश्चितरूप से मुक्त हो जाता है) इस विषय में प्रमाण है। उक्त श्रुतिमूलक 'ब्रह्मगीता' वाक्य भी इस विषय में उदाहृत किया जा सकता है—"यत्तत् साक्षात् सच्चिदानन्दरूपं, भावाभावाशेषलोकस्य हेतुम्। श्रुत्या युक्त्या ब्रह्म जानन्ति मर्त्या, विद्यायोगादेव मुक्ता भवन्ति॥" क्रमपूर्वक गुरु और शिष्य द्वारा कथित 'त्वं' तथा 'अहं' शब्द का अर्थ जो प्रत्यक् चैतन्य, उसे भाव और अभावरूप समस्त प्रपञ्च का कारण कहने से वाच्यैक्य सिद्ध हुआ।

प्रश्न—इस विषय में क्या अन्य भी कोई श्रुति प्रमाण विद्यमान है ?

उत्तर—बृहदारण्यक चौथे अध्याय में प्रथम ब्राह्मण के अन्त में सुषुप्त्यवस्थापन्न जीव के प्रसंग में "यथोनं नामी" इत्यादि द्वारा जो आत्मतत्व सकल जगत के कारणरूप में श्रुत है, वह तत्पदवाच्य आधिदैविक ही है, अध्यात्म नहीं, इस भ्रम के निरसन के लिये भाष्यकार कहते हैं कि जागरण के पहले विद्यमान विज्ञानमय का जो स्वरूप उससे जगत उत्पन्न होता है—"तुम सोये थे, मैं सोया

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

था, इस तरह 'त्वं' 'अहं' पद के वाच्यार्थ में जगदीश्वरत्व आदि तत्पदवाच्य धर्म अवगत होने से—यह भाष्य भी वाच्यैकत्व में प्रमाण है।

प्रश्न—"शरीरस्थोभयेऽपि हि भेदेनैवमधीयते" अर्थात् जीव अन्तर्यामी नहीं है, काण्व और माध्यन्दिनीय दोनों शाखाओं में जीव नियम्य है और अन्तर्यामी नियन्ता है, ऐसी भेदोक्ति देखी जाती है। इस सूत्र से तो वाच्यैक्य सिद्ध नहीं होता।

उत्तर—यह सूत्र अविद्वत्प्रसिद्ध अर्थ का अनुवादक है। अज्ञात अर्थ का अवबोधक अन्तर्यामी ब्राह्मणगत "अदृष्टो द्रष्टा" इत्यादि वाक्य अन्तर्यामीको ही द्रष्टा विज्ञानमय बतलाता है और "नान्योतोऽस्ति द्रष्टा" इत्यादि वाक्य भी अन्तर्यामी से इस विज्ञानमय के भेद का निरास करता है।

प्रश्न—विज्ञानमय अन्तर्यामी से अभिन्न है, इस विषय में शास्त्र में अन्य भी क्या कोई प्रमाण है?

उत्तर—ब्रह्मगीता में भी कहा गया है—"अदृष्टोऽयन्तथा द्रष्टा श्रोता चायं तथा श्रुतः। अमतश्च तथा मन्तेत्यादि वाक्यात् स्वयं भुवा।।" जो अपने विकारसमूह में भीतर और बाहर व्याप्त होकर स्थित है, जो स्वकार्य में अहं अभिमान मैं भीतर हूँ इस प्रकार विज्ञात नहीं होता और इस ज्ञानाभाव के कारण जो सर्वात्मा होता है अर्थात् सर्वत्र ही 'मैं हूँ' इस प्रकार आध्यासिक बुद्धियुक्त होता है, और जो आधिदैविक समस्त भेदों का कारण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होने से नियामक होता है, वही अन्तर्यामी चक्षुरादि का अविषय (अदृष्ट) होने पर भी चक्षुरादि उपाधि से युक्त होकर द्रष्टृता रूप विज्ञानमय भाव का आश्रय (द्रष्टा) होता है और इसी प्रकार अश्रुत एवं अमत होता हुआ भी श्रोता और मन्ता होता[१] है।

प्रश्न—बृहदारण्यक पञ्चमाध्याय का सातवाँ (अन्तर्यामी)—ब्राह्मण वाच्यैक्यपरक नहीं, अपितु 'तत्' और त्वं पद के लक्ष्यैक्य परक है।

उत्तर—यह कहा नहीं जा सकता, क्योंकि लक्ष्यार्थ तो माया वर्जित शुद्ध चैतन्य है, किन्तु अन्तर्यामी ब्राह्मण का प्रतिपाद्य तत्व मायोपाधि युक्त होने से तत्पद वाच्य है। और वही द्रष्टृत्वादि धर्मों का आश्रय होने से त्वं पद का भी वाच्य सिद्ध होता है।

प्रश्न—अच्छा, अन्तर्यामी मायोपाधियुक्त क्यों है ?

उत्तर—"माया को प्रकृति जानो, और माया युक्त को परमेश्वर जानो" इस आशय की श्रुति मायावी परमेश्वर को ही (अन्तर्यामी) सिद्ध करती है। इस विषय में "ईश्वरः सर्वभूतानां

टिप्पणी (१) जीव ब्रह्म से अतिरिक्त है, उसका प्रतिबिम्ब कुछ भी नहीं हो सकता, यह बात 'सृष्टि समीक्षा' और "आनन्दतत्व मीमांसा नामक निबन्ध में बतलाई जा चुकी है"। इस प्रकार जीव तथा ईश्वर की विभेदोक्ति अप्रमाणिक सिद्ध होती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया" यह गीता वाक्य भी प्रमाणभूत है।

प्रश्न—भगवान् का बचन तो अन्तर्यामी ब्राह्मण के विरुद्ध प्रतीत होता है।

उत्तर—यह कभी भी सम्भव नहीं है। गीता वाक्य का अर्थ श्रीविद्यारण्यने चित्रदीप प्रकरण में प्रकट किया है। 'सर्बभूतानि" का अर्थ हृदय पुण्डरीक में स्थित विज्ञानमय जीव है, क्योंकि अन्तर्यामी हृदय में विज्ञानमयरूप में अवस्थित होता है अर्थात् जीव की उपाधि जो विज्ञानमय कोश, उसका उपादान भूत जो अज्ञान, उस अज्ञान उपाधि से युक्त होकर ईश्वर हृदय कमल में स्थित विज्ञानमय कोश में तादात्म्याध्यास को प्राप्त (विकारवान्) होता है। इस प्रकार अन्तर्यामी की 'अदृष्टो द्रष्टा' इत्यादि अन्तर्यामी ब्राह्मण में कथित द्रष्टृता आदि अध्यास प्रसिद्ध प्रदर्शित की गई है।

प्रश्न—'यन्त्रारूढानि' शब्द का अर्थ क्या है ?

उत्तर—देहादि पञ्जर ही यन्त्र है। और देहादि में अभिमान करना ही यन्त्रारूढ होना है।

प्रश्न—'भ्रामयन्' शब्द का अर्थ क्या है ?

उत्तर—विहित और प्रतिषिद्ध कर्मों में जीव की प्रवृत्ति ही भ्रमण है। अर्थात् विज्ञानमय रूप में प्रवृत्ति प्रकृति या स्वशक्ति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वारा सम्भव होती है। इस प्रकार ईश्वर निर्विकार स्वरूप से च्युत होकर निज शक्ति द्वारा विकार को प्राप्त होता है। (यही मायाकर्तृक जीव का भ्रमण है)। 'अन्तर्यामी' इस श्रौत पद का भी यही अभिप्राय है। इस प्रकार अन्तर्यामी ब्राह्मण से भी वाच्यैक्य प्रमाणित होता है।

प्रश्न—अच्छा, वृहदारण्यक में क्या लक्ष्यैक्य सिद्धि नहीं दिखलाई गई है ?

उत्तर—'अस्थूलमनणु' से लेकर, अदृष्टमद्रष्टृ अश्रुतमश्रोतृ, इत्यादि निर्धर्मकपरक (निरूपाधिकता का द्योतक) अग्रीम अष्टम ब्राह्मण लक्ष्यैक्य का बोधक है।

प्रश्न—लक्ष्यैक्यमात्रता (या प्रतिकर्म व्यवस्थावाद) से वाच्यैक्य बाधित क्यो नहीं होगा ?

उत्तर—जन्मादिसूत्रभाष्यलक्ष्य चैतन्य में लक्षणा की योजना (समन्वय) और विधेय ब्रह्म का साक्षात्कार इन दोनों के पहले सुषुप्ति में 'अहम्' 'अहम्' रूप में स्वतः प्रकाशमान स्वात्मानन्द परक "आनन्दो ब्रह्म व्यजानात्" यह उद्देश्य वस्तुनिर्णायक वाक्य और "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते" यह सामान्यरूप उद्देश्य बोधक लक्षणावाक्य यह दोनों ही हस्त, कर आदि शब्दों की तरह समानार्थक है, क्योंकि दोनों ही वाक्य जन्मादि के कारणत्व और विधेय ब्रह्मत्व के ज्ञापक हैं, "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" (सृष्टि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करके उसके उपरान्त) इस श्रुति के अनुसार ईश्वर और जीव में काल भेद होने पर भी यह आध्यात्मिक जीव तथा ईश्वर के ऐक्य परामर्श का बाधक नहीं होता, क्योंकि लक्षण तथा आनन्द वाक्य की पर्यायता भाष्य में उपदिष्ट हुई है। अतएव सद्यः मोक्ष के पात्र, बुद्धिमान, मुख्य अधिकारी के लिये दोनों पदों के धर्मसाम्य के कारण वेदान्त शास्त्र में वाच्यैक्य का उपदेश किया गया है।

अनुभूतिप्रकाश के नवम अध्याय में श्रीविद्यारण्य ने बताया है कि अद्वैत तत्व जानने के लिये शस्त्रों में सृष्टि का उपदेश है। आधिदैविक परमेश्वररचित सृष्टि साधारण या महासृष्टि है। उसके अनुसार पहले तत्पदार्थ को जानकर फिर त्वं पदार्थ का शोधन करके महावाक्य की सहायया से लक्ष्यैक्य का बोध होने में विलम्ब होता है। प्रातीतिक सृष्टि (जीवसृष्टि या दृष्टि सृष्टि) के अनुसार अन्तरात्मा का शीघ्र ही ब्रह्मरूप में अनुभव किया जाता है। अज्ञान से तादात्म्यापन्न निजस्वरूप से सृष्टि उत्पन्न हुई है, अतएव स्वयं ही जगत् का कर्ता और सच्चिदानन्द परमात्मा हूँ, ऐसा अल्प समय में ही और अनायास जाना जा सकता है। उत्तम अधिकारी के लिये दृष्टि सृष्टि और वाच्यैक्य ज्ञान मोक्ष का अति सुगम उपाय है। "अद्वैततत्ववोधाय सृष्टिः सर्वत्र कथ्यते। अल्पा सा महती वास्तु सदद्वैतं विवुध्यते" प्रौढस्य राजगेहस्य द्वारं स्यात् पुरतो महत्। पृष्ठतोऽन्तः पुरं द्वारं चोरद्वाराख्यमल्पकम्। महा-द्वारेण सहसा दुर्लभं राजदर्शनम्। जनसम्मर्दबाहुल्याद् द्वाराणाञ्च बहुत्वतः॥ अल्पद्वारे स्वामिभक्तो हठात् राजानमीक्षते। दृष्टि-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सृष्ट्यानुभूत्यर्थी वेत्त्यात्मानं तथा हठात् ॥ महासृष्ट्या तत्पदार्थमा दौ ज्ञात्वा तथा पुनः । त्वं पदार्थं शोधयित्वा वाक्याद्बोधो विलम्बते ॥ तस्मादिहाजातशत्रुर्बालाकेरविलम्बिता । प्रत्यग् ब्रह्मत्ववोधार्थं दृष्टि-सृष्टिमवोचत ॥ सुप्तावासीद्यदज्ञानमहंकार-लयोऽत्र हि । सोऽहंकारः कर्मभोगकाले स्यात् पुनरुद्गतः ॥ तेना-वच्छिन्न आत्मापि कर्ता भोक्तापिपूर्ववत् । भोक्तुरात्मन उत्पन्नं भोगसाधनमिन्द्रियम् ॥ इन्द्रियप्रेरको देवानुग्रहस्तत उद्गतः ॥ अक्षेभ्योऽनुगृहीतेभ्योः लोका भ्रान्तिसमुद्गताः ॥ सेयं प्रातीतिकी सृष्टिस्तमाज्जाता ततः स्वयम् ॥ जगत् कर्ता परात्मेति क्षणाद् वालोऽपि बुध्यते ॥"

'तत्वमसि' इस महावाक्य के अन्तर्गत तत् और त्वं ये दोनों पद पर्याय (एकार्थक) होने से वाच्यैक्य बोधक होते हैं। क्योंकि वे दृष्टि सृष्टि प्रक्रिया द्वारा अपने में जगज्जन्मादि के कारणत्व और ब्रह्मत्व के बोधक पूर्वोक्त लक्षण वाक्य और आनन्द वाक्य इन दोनों वाक्यों के समान है। अतएव लक्ष्यैक्य (प्रति कर्म व्यवस्थावाद) के द्वारा वाच्यैक्य का अल्प परिणाम में भी बोध होना सम्भव नहीं है।

प्रश्न—अब तक जो कुछ कहा गया उससे क्या प्रकट किया गया?

उत्तर—सौषुप्त प्राज्ञ में जीव तथा ईश्वर की वाच्यैक्यता प्रदर्शित हुई।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रश्न—अब क्या दिखलाया जायेगा ?

उत्तर—जाग्रत अवस्थायुक्त विज्ञानमय में भी यह वाच्यैक्य दिखलाया जारहा है—"यथा फेनतरंगादिसमुद्रादुत्थितं पुनः। समुद्रे लीयते तद्वज्जगन्मय्येव लीयते (श्रुति)"। जिस प्रकार भृगुवल्ली में आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते जीवन्ति अभिसंविशन्ति' यह लट् प्रयोग विज्ञानमय में जाग्रत् कालिक जगत की उपादानता का ज्ञापन करता है, उसी प्रकार 'तत्वमसि' वाक्यगत लुट् भी वर्तमान कालीन होने के कारण "ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्" इस वाक्य के अनुसार विज्ञानमय में जाग्रत् कालीन सकल कार्यों की उपादानता (कारणता) का बोधन करता है। 'तदैक्षत बहु स्याम्' इस श्रुति के अनुसार सृष्टि के पहले जो सदाख्य जगत् उपादान वर्तमान था, उस जगत के अभिन्न निमित्त और उपादानभूत परमात्माने जागने की इच्छा की—"जो तुम इस समय जाग्रत हो, उसी तुमने पहले जागने की इच्छा की थी।" उसी प्रकार श्रुत्युक्त जिसने जागने की इच्छा की थी वह और जो इस समय जाग्रत है, वे दोनों तुम ही हो। आचार्य भी मण्डन मिश्र को तत्व उपदेश करते हैं—"यः पूर्वमेक एवासीत् सृष्ट्वा पश्चादिदञ्जगत्। प्रविष्टो जीवरूपेण स एवात्मा भवान् परः॥ सच्चिदानन्द एव त्वं विस्मृत्यात्मतया परम्। जीवभाव मनुप्राप्तः स एवासीत्यबोधत॥; अतएव विज्ञानमय में जीवेशत्व रूप वाच्यैकता सिद्ध हुई।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रश्न—इस सम्बन्ध में शारीरक सूत्र में भी क्या कुछ प्रमाण है ?

उत्तर—'कतम आत्मा' इस प्रश्न के उत्तररूप "सोऽयं विज्ञान मयः" यहाँ से लेकर 'स वा एष महानज आत्मा' इत्यादि वाजसनेयक वाक्य है। "सदेव सोम्यदमग्र आसीत्" इस रूप में निदिष्ट जो सदाख्य जगदुपादान है वही "स्वप्नान्तं हि मे सौम्य विजानीहि" इत्यादि रूप में सुषुप्त्यवस्थापन्न 'स्व' शब्द के द्वारा अनुकृष्ट होता है। अतएव इस सौषुप्त तत्व ही 'छान्दोग्य' में 'स आत्मा तत्वमसि' इस प्रकार विज्ञानमय से अभिन्नरूप में नौ वार बोधन किया गया है। इन काण्व और छान्दोग्य दोनों श्रुतियों की समानार्थकता की निर्णायक उत्तर श्रुति से सृष्टि विषय में आत्म अर्थ में परमात्मा जानना चाहिये[1] इस अधिकरण तथा उसके भाष्य द्वारा सदाख्य

टिप्पणी (१) 'स इमाल्लोकानसृजत' परमात्मा ने सकल लोकों की सृष्टि की, हिरण्यगर्भ ने नहीं, क्योंकि इच्छापूर्वक कर्तृत्वरूप विशेषण मुख्यरूप से परमात्मा में ही श्रुत है। "प्राज्ञोऽस्मीति सुवेदनात् किल यतः सर्वज्ञसर्वेशता सार्वात्म्यं च नियन्त्रिताऽ-खिलजगत् स्थित्यप्ययाधारता। लभ्यातः श्रवणदिभिः स्वपरयो र्भेदभ्रमादागतां त्यक्त्वा संशयभावनाञ्चविदुषा वाच्यैक्य मादीयताम्" अर्थात् मैं प्राज्ञ, सर्वेश्वर, सर्वात्मा, अन्तर्यामी और अखिल जगत का आधार हूँ, इस प्रकार सम्यक् ज्ञान के फलस्वरूप कण्ठगत चामीकर (सुवर्ण हार) की तरह स्वकीय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वस्तु और विज्ञानमय दोनों ही जब कि जगत के प्रकृति (उपदान कारण) हैं, अतएव तत् और त्वं पद का वाच्यैक्य—विवक्षित होता है। "चित्त व्यापारनाशेतु तदभावं सुरर्षाभः। स्वप्रकाशेन जानाति सुषुप्तौ वेदनामपि" इस ब्रह्मगीता के वाक्य के अनुसार जाग्रत और स्वप्नकाल में अपने में आरोपित द्वैत भ्रम के लयाधिकरण रूप में 'इस समय सोया हूँ, इस प्रकार अभेदावगाही सुषुप्ति कालिक स्वरूप प्रकाश के द्वारा और "मैं आधी कथा सुनने के बाद सो गया, अतएव यह पूरी कथा सुन नहीं सका" इस प्रकार विज्ञानमय से सुषुप्त पुरुष के अभेद व्यवहार से वाच्यैक्य सिद्ध होता है। इस प्रकार श्रुति, स्मृति, न्याय और अनुभव के द्वारा आध्यात्मिक अनिदंचैतन्य का जगत्कारणत्व प्रदर्शनपूर्वक वाच्यैक्य उपदेश समाप्त हुआ।

समाप्त

●

सर्वज्ञतादि पुनः प्राप्त हो जाता है। इसीलिये सकल संशय, असम्भावना तथा विपरीत भावना का—क्रमशः अपने जगत् सम्बन्धी अध्यारोप के निर्णायक वाच्यैक्य—विमर्श के श्रवण, मनन और निदिध्यासन के द्वारा परित्याग करके विद्वद्गण वाच्यैक्य का अंगीकार करें।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परिशिष्ट

(१) ज्ञान वस्तुरूप है (वस्तुतन्त्र)

केवल उपासना पुरुषतन्त्र नहीं है, किन्तु प्रमाता पुरुष द्वारा घट-पट आदि पदार्थों का ज्ञान भी पुरुषतन्त्र है। ब्रह्मज्ञान पुरुषतन्त्र नहीं है। ब्रह्मज्ञान केवल अखण्ड वस्तुरूप होने के कारण वह ज्ञान का विषय नहीं है। अर्थात ज्ञाता प्रमाण द्वारा ज्ञेय को नहीं जानता है। किन्तु केवल ज्ञेय वस्तु स्वयं प्रकाशित होकर रहता है। ब्रह्मज्ञान में साभास अखण्ड-कारवृत्ति कल्पितरूप से विद्यमान रहती है। कल्पित वस्तु का स्वरूप अधिष्ठान होने के कारण ब्रह्मज्ञान केवल ब्रह्मरूप (वस्तुतन्त्र) है। ब्रह्म से किञ्चित् भी भिन्न नहीं है।

(२) त्रिपुटि का विनाश कैसे किया जाय ?

रज्जु में सर्प की तरह ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय आदि त्रिपुटी साक्षिचैतन्य में कल्पित है। वह आगमापायी है किन्तु तुम तीनों काल में एकरस विद्यमान हो। तुम अच्छी तरह से देख कर बताओ कि वस्तुतः तुम ज्ञाता हो ? सुषुप्ति समाधि में ज्ञाता नहीं रहता, किन्तु तुम विद्यमान रहते हो। त्रिपुटी सदाकाल मिथ्या है, तुम तीनों काल में सत्य हो। यह अच्छी तरह समझे विना त्रिपुटी का विनाश कैसे किया जाय ? यह पूछना युक्ति-युक्त नहीं है।

* समाप्त *

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाल्मीकिविद्यापीठपुस्तकालयः

प्रत्यावर्तनतिथिः

(
(
(३
(३१
(३९
(४१)
(४४)
(४७)
(५०) श्
(५३) ना
(५६) शां
(५९) मोक्ष
(६१) उपदे
(६४) हरिस्त
(६७) परमाथ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परिशिष्ट

(१) ज्ञान वस्तुरूप है (वस्तुतन्त्र)

केवल उपासना पुरुषतन्त्र नहीं है, किन्तु प्रमाता पुरुष द्वारा घट-पट आदि पदार्थों का ज्ञान भी पुरुषतन्त्र है। ब्रह्मज्ञान पुरुषतन्त्र नहीं है। ब्रह्मज्ञान केवल अखण्ड वस्तुरूप होने के कारण वह ज्ञान का विषय नहीं है। अर्थात ज्ञाता प्रमाण द्वारा ज्ञेय को नहीं जानता है। किन्तु केवल ज्ञेय वस्तु स्वयं प्रकाशित होकर रहता है। ब्रह्मज्ञान में साभास अखण्ड-कारवृत्ति कल्पितरूप से विद्यमान रहती है। कल्पित वस्तु का स्वरूप अधिष्ठान होने के कारण ब्रह्मज्ञान केवल ब्रह्मरूप (वस्तुतन्त्र) है। ब्रह्म से किञ्चित् भी भिन्न नहीं है।

(२) त्रिपुटि का विनाश कैसे किया जाय ?

रज्जु में सर्प की तरह ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय आदि त्रिपुटी साक्षिचैतन्य में कल्पित है। वह आगमापायी है किन्तु तुम तीनों काल में एकरस विद्यमान हो। तुम अच्छी तरह से देख कर बताओ कि वस्तुतः तुम ज्ञाता हो ? सुषुप्ति समाधि में ज्ञाता नहीं रहता, किन्तु तुम विद्यमान रहते हो। त्रिपुटी सदाकाल मिथ्या है, तुम तीनों काल में सत्य हो। यह अच्छी तरह समझे विना त्रिपुटी का विनाश कैसे किया जाय ? यह पूछना युक्ति-युक्त नहीं है।

* समाप्त *

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अद्वैत वेदान्तविषयक कृतियाँ

नेपाली में

(१) अमृतवचन, (२) आत्म प्रकाश, (३) महौषधि, (४) ज्ञानदीप, (५) आत्मविचार, (६) गीता रहस्य, (७) स्वरूप प्रकाश, (८) सुखको बाटो, (९) ईश्वर विज्ञान, (१०) ज्ञान साधन, (११) ज्ञान सर्वस्व, (१२) ज्ञानालोक, (१३) वाशिष्ठामृत, (१४) हस्तामलक र आत्मनिष्ठा, (१५) वेदान्त रहस्य प्रश्नोत्तरी, (१६) अद्वैत सुधा र आत्मप्रदर्शन (१७) वेदान्त विज्ञान, (१८) गीतामृत (प्रामाण तात्पर्य टीका (१९) योग सिद्धि, (२०) पराशान्ति, (२१) अद्वैत सर्वस्व, (२२) ज्ञाननिष्पत्ति, (२३) वेदको कर्मकाण्ड र ज्ञानकाण्ड, (२४) गीताको भूमिका, (२५) सुषुप्ति र सृष्टि (२६) रूरूक्षेत्र र साक्षात्कार, (२७) मोक्षको अनन्य मार्ग, (२८) चतुः सूत्री, (२९) आत्म मनन, (३०) लघु वेदान्तत्रय, (३१) अद्वैत चिन्तामृत, (३२) जीवन्मुक्ति सिद्धि, (३३) आत्मानुसन्धान, (३४) ईश्वर निरूपण, (३५) सूत्र प्रस्थान, (३६) ब्रह्म गीता, (३७) जगत भ्रम निरसन, (३८) वशिष्ठ गीता, (३९) साक्षात्कार रहस्यको विवेचन (४०) विचारालोक, (४१) गीता गूढार्थ दीपिका, (४२) शंकर जीवनी, (४३) भक्ति शिक्षा, (४४) नैतिक शिक्षा, (४५) सुभाषित रत्न, (४६) गीता परिचय, (४७) संयुक्त अक्षर परिचय, (४८) गीता सार, (४९) अच्युताष्टक, (५०) श्रुति विज्ञान, (५१) चित्तविश्रान्ति, (५२) साधन रहस्य, (५३) नारायणप्रसाद, (५४) मोक्षोपाय गुरु चन्द्रिका, (५५) वाशिष्ठ विज्ञान, (५६) शांकर वाशिष्ठ वेदान्त रहस्य, (५७) कर्म र भक्ति, (५८) शत सूत्री, (५९) मोक्षोपाय लघुचन्द्रिका, (६०) कर्मसंन्यास र काशीवास, (६१) उपदेश संग्रह, (६२) परमार्थ पत्रावलि, (६३) गीतामा अद्वैतवाद (६४) हरिस्तोत्र, (६५) योगवाशिष्ठ प्रश्नोत्तरी, (६६) विश्वराज स्मृति, (६७) परमार्थ प्रश्नोत्तरी, (६८) ज्ञानाञ्जन, (६९) सर्वोत्तम ध्यान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ब्रह्मनिष्ठ श्रीगुरुदेव डॉ० क्षितीशचन्द्र चक्रवर्तीजी की
भक्ति, ज्ञान, समाधि, साक्षात्कार, जीवन्मुक्ति
विदेह मुक्ति आदि शास्त्रीय विषयों की गम्भीर
एवं विशद विवेचनाओं से पूर्ण कृतियाँ—

वेदान्त

हिन्दी में

(१) स्वरूपानुभव
(२) भगवान विश्वनाथ का स्वरूप
(३) वेदान्त विज्ञान
(४) सर्व विज्ञान
(५) समाधि
(६) साधन सार संग्रह
(७) तैत्तिरीय उपनिषद्
(८) छान्दोग्य उपनिषन्
(९) आनन्दमयकोश
(१०) वेदान्त रहस्य
(११) सर्वत्याग या संन्यास
(१२) आत्मनिरूपण
(१३) भक्ति और ज्ञान
(१४) क्षेत्रज्ञ
(१५) प्रबोध पञ्चक
(१६) प्रपञ्च प्रतीति
(१७) सृष्टि समीक्षा

संस्कृत में

(१) वेदान्तरहस्य प्रश्नोत्तरी

अंग्रेजी में

(1) Vision of Reality
(2) Great Panacea
(3) Simple English Reader

●

पुस्तक प्राप्ति स्थान :—

साभा प्रकाशन

केन्द्रीय कार्यालय—पुल चौक, काठमाडौं एवं भैरहव
विराट नगर, पोखरा आदि

तथा

साभा प्रकाशन की शाखायें एवं उपशाखायें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ब्रह्मनिष्ठ श्रीगुरुदेव डॉ० क्षितीशचन्द्र चक्रवर्तीजी की
भक्ति, ज्ञान, समाधि, साक्षात्कार, जीवन्मुक्ति
विदेह मुक्ति आदि शास्त्रीय विषयों की गम्भीर
एवं विशद विवेचनाओं से पूर्ण कृतियाँ—

हिन्दी में

(१) स्वरूपानुभव
(२) भगवान विश्वनाथ का स्वरूप
(३) वेदान्त विज्ञान
(४) सर्व विज्ञान
(५) समाधि
(६) साधन सार संग्रह
(७) तैत्तिरीय उपनिषद्
(८) छान्दोग्य उपनिषन्
(९) आनन्दमयकोश
(१०) वेदान्त रहस्य
(११) सर्वत्याग या संन्यास
(१२) आत्मनिरूपण
(१३) भक्ति और ज्ञान
(१४) क्षेत्रज्ञ
(१५) प्रबोध पञ्चक
(१६) प्रपञ्च प्रतीति
(१७) सृष्टि समीक्षा

संस्कृत में

(१) वेदान्तरहस्य प्रश्नोत्तरी

अंग्रेजी में

(1) Vision of Reality
(2) Great Panacea
(3) Simple English Reader

●

पुस्तक प्राप्ति स्थान :—

साक्षा प्रकाशन

केन्द्रीय कार्यालय—पुल चौक, काठमाडौं एवं भैरहव
विराट नगर, पोखरा आदि

तथा

साक्षा प्रकाशन की शाखायें एवं उपशाखायें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu